प्रकाशक:

भानुकुमार जैन
मैनेजिंग डायरेक्टर—हिंदी ज्ञान-मन्दिर लि०
२६, रुस्तम बिल्डिंग, चर्चगेट स्ट्रीट
फोर्ट, बम्बई,

पहली बार
२०००

अप्रैल
१९४८

मूल्य
दो रुपये

मुद्रक:
कन्हैयालाल शाह
ओरिएंट प्रिंटिंग हाउस,
नवीवाडी, बम्बई २

टाल्स्टाय

विषय-सूची

प्रकाशकीय

तीस जनवरी १६४८ का प्रातःकाल, इस पुस्तक का प्रूफ देख रहा था; प्रूफ का निम्न स्थल—

"लेकिन साथ ही, यह बड़ी विचित्र बात है, कि उस (टाल्स्टाय) के सिद्धांत ने दूसरे लाखों व्यक्तियों पर इससे ठीक उल्टा असर डाला। दुनिया के दूसरे छोर पर, हिन्दोस्तान में गाँधीजी ने, जो कि ईसाई नहीं है, टॉल्स्टाय के उसी मिशन का बीड़ा उठा लिया है। जब कि रूसियों ने टाल्स्टाय की मात्र प्रगतिशीलता को अपनाया। गाँधीजी ने उसके अप्रतिकार के सिद्धान्त को अपनाया है और अपनी जाति के चालीस करोड़ मनुष्यों के बीच वह पहला व्यक्ति था, जिसने सत्याग्रह के तन्त्र का संगठन किया। अपने इस सत्याग्रही युद्ध में उसने भी उन्हीं अहिंसक शस्त्रों को अपनाया, जिन्हें टाल्स्टाय ने जायज करार देकर जिनकी सिफारिश की थी; याने उद्योग-वाद का नाश, गृहउद्योगों की स्थापना और बाहरी आवश्यकताओं को अधिक से अधिक कम करके आन्तरिक और राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्त करना। रूस की सक्रिय क्रांति में और हिन्दोस्तान की सत्याग्रही क्रांति में, हजारों-लाखों व्यक्तियों ने इस प्रतिगामी क्रांतिकारी या विद्रोही प्रतिगामी के विचारों को अपनाया है।"

और शाम को ६ बजे, एक परिचितसे आहट् पा, एक हॉटलके दरवाजेपर जाकर सुना—"यह आल इंडिया रेडियो है। अभी हम एक बहुत दुखभरी खबर सुनाते हैं—'महात्मागाँधी को आज शाम को ५ बजे, उनके प्रार्थना-स्थान जाते समय बिड़ला हाउस में एक युवक ने तीन बार गोली झाड़ दी, और वे वहीं मर गये।"

मुझे बापू की 'आत्मकथा' याद आ गई, जिसे सन् '३० में पढ़ा था। गाँधीजी तीन महान् व्यक्तियों से अपने जीवन में प्रभावित थे:—एक श्रीमद्राजचन्द्र से: उनके विमल पावन-चरित्रसे, शतावधानता से, अध्यात्ममेंकी उनकी सूक्ष्म पैठ और उनकी व्यवहारदक्षता से; दूसरे—रस्किन: कि जिसकी 'अंटु दि लास्ट' पुस्तक के

आधार पर बापू ने स्वयं 'सर्वोदय—(पुस्तक)' की रचना की; और टॉल्स्टाय : टाल्स्टाय का उल्लेख बापू ने (हिन्दी) आत्मकथा में इस प्रकार किया है—

"टाल्स्टाय की 'वैकुण्ठ तुम्हारे हृदय में है'– नामक पुस्तक ने तो मुझे मुग्ध कर लिया, उसकी बड़ी गहरी छाप मुझ पर पड़ी । इस पुस्तक की स्वतन्त्र विचार-शैली, उसकी प्रौढ़ नीति, उस (पुस्तक में वर्णित टाल्स्टाय) के सत्य के सामने मि० कोट्स की दी हुई पुस्तकें शुष्क मालूम हुईं।

"टाल्स्टाय की पुस्तकों का स्वाध्याय बढ़ाया। उनकी 'गोस्पेल इन ब्रीफ', 'व्हाट टु डू'—इत्यादि पुस्तकों ने मेरे दिल पर गहरी छाप डाली। 'विश्व-प्रेम' मनुष्य को कहाँ तक ले जाता है—यह मैं उससे अधिकाधिक समझने लगा।"

—जब मैं प्रूफ का उपरोक्त स्थल पढ़ रहा था, तभी मेरे मन में आया कि पुस्तक तैयार होते ही, पहली प्रति बापू को भेज दूँगा, और ज़्वीग द्वारा उनके प्रति लिखी गयी उपरोक्त टिप्पणी तथा यह रिमार्क कि—

—"लेकिन जिस तरह से ये(गाँधीजीद्वारा)विचार अपनाये गये हैं, उस तरीके को उनका स्रष्टा शायद अस्वीकार कर देता और शायद उसकी भर्त्सनाभी करता।"

—इस पर बापू की सम्मति लूँगा, और पूछूँगा कि यह भेद (टॉल्स्टॉय और आपमें) क्यों है ? सत्याग्रह और असहयोगकी ही चर्चा इसमें प्रमुख होती । जो भेद हमें स्पष्ट दिखाई देता है, वह यह है कि टॉल्स्टॉय संपूर्ण अराजकवादी विचारों का है, जब कि बापू ने स्वयं स्वतन्त्र राष्ट्रीय सरकार की स्थापना पर जोर दिया है; इस सरकार की बुराइयाँ दूर करने के लिये अपने जीवन-काल में उन्होंने सतत प्रयत्न और संघर्ष किया है। मेरा यह भी अनुमान था कि समयाभाव और व्यस्तता की वजह से वे यदि इस पुस्तक को न भी पढ़ पाये, तो भी हिन्दी या भारतीय-साहित्य में इसे प्रकाशित-भर देख वे प्रसन्नता अनुभव करेंगे; कारण वे स्वयं लेखक अनुवादक और प्रकाशक तीनों रहे हैं।

शाम को ही बापू न रहे। बर्नार्डशा के ये उद्गार कि 'अधिक भला होना भी खतरनाक है' बापू के जीवन और मृत्यु पर ठीक बैठे हैं। "विश्वप्रेम' मनुष्य को कहाँ तक ले जाता है ?"—टॉल्स्टॉय के इस निवेदन का एक उत्तर बापू की मौत भी

है। यही उत्तर महात्मा ईसा और गणेशशंकर विद्यार्थी ने अपने बलिदानों से दिया; और विश्वप्रेम, विश्वशांति, और मानवीय समता के लिये ही विश्व के कितने ही लालोंने—किसानों-मजदूरों और उत्पीड़ित जनता के बेटों ने, अपने-अपने देशों के क्रान्तिकारी आन्दोलनों में अपनी-अपनी शहादतभरी मौतों से दिया है। इसी विश्वप्रेम की स्थापना के लिये अहर्निश मार्ग ढूँढ़नेवाले, तत्वशोधक टॉल्स्टॉय की इस संक्षिप्त आकलित रचना का प्रकाशन करते हुए हमें गर्व होता है।

काउंट लियो टॉल्स्टॉय का जन्म रूस देश के यासनाया पोलियाना स्थान में अपने वंशानुगत मकान में ६ सितंबर १८२८ को हुआ था। उनकी वंश-परम्परा प्राचीन और घराना कुलीन माना जाता था। स्वच्छन्द विलासभरी जवानीके उतरते दिनों में टॉल्स्टॉय फ़ौज में भर्ती हुआ और क्रीमियन युद्ध में लड़ा। उन्हीं दिनों उसने लिखना आरम्भ किया। इस प्रयास में अंत में उसे ख्याति मिली। दिन-ब-दिन उसके विचार गंभीर और समाजवादी मोड़ के होते जाते थे; उसके विचारों को जार द्वितीय की प्रगतिशील नीति के कारण वेग मिला। १८६२ में उसका सुखद विवाह हुआ। अगले दशक में उसे अपने दो उपन्यास 'युद्ध और शांति' तथा 'अन्ना कैरेनिना' के प्रकाशन देखने को मिले। जीवन के बाकी वर्ष उसने अपनी जागीर में ही, भलाई से रहते हुए, अधिकाधिक सादगी से बिताए। एकाएक वह बीमार पड़ गया और २० नवंबर १९१० को इस संसार से चल बसा।

संसार-प्रसिद्ध एक और लेखक स्टिफेन ज़्वीग की एक रचना 'एक अपरिचित स्त्रीका पत्र' हम छाप चुके हैं। यह 'टॉलस्टाय' संकलित : कि जिसमें ज़्वीग द्वारा टॉल्स्टॉय की कई रचनाओं का प्रातिनिधिक दिग्दर्शन है, उसकी दूसरी रचना है। ज़्वीग संसार के महानतम लेखकोंमें से एक हैं। एक बार 'लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्रसंघ)' के अंतर्राष्ट्रीय बौद्धिक-सहयोग-विभाग ने अपनी जाँच-रिपोर्ट में लिखा था—"इस समय संसार में सबसे अधिक अनूदित ग्रन्थकार स्टिफेन ज़्वीग हैं।" और सचमुच ज़्वीग की रचनाएँ संसारकी लगभग ३० प्रमुख भाषाओंमें अनूदित होकर, कुल मिलाकर लगभग करोड़ों बिक चुकी हैं। हिन्दी में प्रकाशित करने का यह प्रथम श्रेय हमें ही है।

ज़्वीग जब उन्नीस वर्ष के थे, तब ही जर्मन काव्य--ग्रन्थों के एक सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक ने उनकी कविताओंका एक संग्रह छापने के लिए स्वीकृत किया था। सन् १९०१ में उनकी प्रथम कृति छपी और सन् १९४२ में उन्हें हिटलरशाही के ज़ुल्मों से तंग आकर पत्नीसहित, विषपान करके आत्महत्या कर लेनी पड़ी। जीवन के अंतिम वर्ष उनके अत्यन्त कष्टमय बीते। उनके पिता यद्यपि करोड़पति थे, लेकिन यहूदी होने के कारण, उन्हें दर-दर मारा-मारा और भटकते फिरना पड़ा।

इटली में मुसोलिनी ज़्वीग की रचनाओंका प्रशंसक और प्रकाशक भी रहा। रूसमें मेक्सिम गोर्कीने ज़्वीग के रूसी भाषा में अनुवादित ग्रंथों की भूमिका लिखी।

ज़्वीग की लाखों किताबें नाज़ियों ने जप्त कर लीं, नष्ट कर दीं और जलवा-डालीं। उनका व्यक्तिगत साहित्यिक संग्रहालय कि जिसकी गणना कहते हैं विश्व के सर्वश्रेष्ठ व्यक्तिगत संग्रहालयों में की जानी चाहिए; नाज़ियों ने छिन्न--भिन्न कर दिया और उनके परिवार को अनेक कष्ट दिये।

वीरेन्द्रकुमार इस ग्रन्थ के हिन्दी अनुवादक का भी महत्व है। यह अनुवाद इस प्रकार का हुआ है, जैसा कि टॉल्स्टॉय ने स्वयं ही लिखा हो और ज़्वीग ने स्वयं ही इस ग्रंथ का हिन्दी में संपादन किया हो; शैली में कहीं भी अंतर नहीं है। यहाँ तक कि परिच्छेद तो परिच्छेद, लेकिन वाक्य-रचना विरामादि चिन्हसहित भी ज्यों की त्यों श्रेष्ठतम हिन्दी में उतार दी गई है। मूल से मिलाकर देखने पर कई शब्दों, शब्द-संगठनों और वाक्यों के प्रयोग करने की ख़ूबीका पता हमें लगता है; मात्र उदाहरण के लिए: जैसे--'गोस्पेल' शब्द के लिये 'धर्म--देशनाओं; Tolstoi's ethical thought in imaginative form का हिन्दीकरण है---'टालस्टायकी नैतिक विचारणाका कल्पक स्वरूप'; और—

But in themselves ideas have no tendency. Not until the times seize them are they carried away like a sail before the wind. Ideas in themselves are only motor-forces, producing motion without knowing the goal of this motion, this excitement. It makes no

difference how large a part of them may be open to attack, since Tolstoi's ideas undoubtly made history on a world scale, his theoratical writings with their contradictions belong once and for all with the most important intellectual and social costituents of our times.

"लेकिन अपने-आपमें ही विचारोंकी कोई रुझान नहीं होती, जब तक समय की पकड़ उनपर नहीं बैठ जाती; हवाके वहन करनेवाले पाल की तरह ही उन विचारों को गतिमान नहीं किया जा सकता। विचार तो गति-शक्तिके यन्त्र मात्र हैं, जो इस गति और आवेगके लक्ष्यको जाने बिना ही गतिको जन्म देते हैं। प्रस्तुत विचारोंमें से कितने खण्डनीय हैं, यह जाननेसे तो कोई खास अन्तर नहीं पड़ता है। चूँकि टॉल्स्टॉयके विचारोंने निःसंदेह एक विश्व-व्यापी पैमाने पर इतिहासका निर्माण किया है; इसलिये उसकी सैद्धान्तिक रचनाएँ अपने सारे पारस्परिक विरोधोंके बावजूद, हमेशाके लिये हमारे युगके सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक और सामाजिक निर्माण-तन्तुओंके बीच अपना स्थान बना चुकी हैं।

वीरेन्द्रजी आजकल अंतरराष्ट्रीय 'पी० ई० एन०'—साहित्यिक-संस्थासे प्रकाशित अंग्रेजीके 'आर्यन-पाथ' के हिंदी संस्करणके संपादनकी तैयारी में जुटे हुए हैं; आत्म-परिणय, मुक्तिदूत, शेषदान, प्रकाशकी खोजमें, ज्योतिर्कन्या–आदि इनकी रचनाएँ उपलब्ध हैं।

दर्शन, राजनीति और समाज-शास्त्रके विद्यार्थियों के लिये 'टॉल्स्टॉय' यह ग्रंथ विचार-संघर्ष का काम करेगा। धर्म, चर्च, सत्ता, शासक और वैभवपूर्ण स्थितिवालों की कटु आलोचना; इतिहास और युगका विश्लेषण; तथा शोषितों, उत्पीड़ितों और आम-जनतापर घटित होनेवाली प्रताड़नाओंका हूबहू वर्णन जो टॉल्स्टॉयने उस जमानेका किया है; वह आज भी ज्यों का त्यों दुनियाके अधिकांश देशों और उपनिवेशोंपर घटित हो रहा है। अनुवादका काम अत्यंत कठिन है, वही व्यक्ति अनुवाद का काम अच्छा कर सकता है, जो अनुवाद्य वस्तुके विषयके साथ हृदय और मनका तादात्म्य स्थापित

कर ले और मूल तथा रूपांतर की भाषा दोनोंके लेखन पर जिसका अच्छा खासा अधिकार हो। वीरेन्द्रजी की कुशलता इसमें निहित है। ऐसे अनुवादक का स्थान साहित्य-जगतमें गणनीय है, अतः उनका परिचय यहाँ आवश्यक है। विंध्य-भू-मालवा के निवासी, वहीं जन्मे, वहाँ की शोभाश्री से अत्यंत प्रभावित, इतने कि वहाँ की प्रकृति और जीवन का वर्णन जितनी सफलता से श्री वीरेन्द्रने अपने साहित्यमें निभाया है, उतना वर्तमान के कोई कलाकार ने नहीं। जैन-संस्कार में पले हुए इस युवक कलाकार की बाल्यकाल (मात्र १९ वर्ष की उम्र) की ही रचनाएँ इतनी प्रौढ़ और सफल हुई हैं कि जिसके लिए स्व० प्रेमचंद ने हंस में लिखा था।

"जैनेन्द्र के बाद हिन्दी-कहानी क्षेत्रमें अज्ञेय, वीरेन्दकुमार और सत्यजीवन वर्मा अग्रणी हैं।"

इस ग्रन्थ में शुरू का अध्याय टाल्स्टाय पर ज़्वीग ने लिखा है। वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। टाल्स्टाय की मनोदशा और उसके जीवन के उतार-चढ़ाव का उसमें पूरा विश्लेषण है। टॉल्स्टॉय अराजकवादी था। उस जमाने के अराजकवादियों में प्रिंस-कोपाटकिन, मैलटेस्टा और लुई माइकेल प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं। अराजकवादी लोग उद्देश्यतः अत्यन्त मानवतावादी होते हैं; उद्देश्य-प्राप्ति के लिए उनका कष्ट-सहन और आत्मिक-बलिदान मनुष्य के जीवन में स्फूर्ति और गति देते हैं। भारत के लोकके हृदय और तीर्थ-काव्य पं० जवाहरलाल नेहरूने 'मेरी कहानी' में मैलटेस्टा के लिए लिखा है कि—मैलटेस्टा के लिये इटली की कोर्ट में फैसला माँगते हुए सरकारी वकील ने जज से अपील यह की थी, कि मैलटेस्टा को इसीलिए फाँसी दी जानी चाहिये कि उसकी (जनता में ऐसे काम करने की) वजह से इटली के न्यायालय और अदालतों के लिए कोई काम ही नहीं रह जाता है; लेकिन उनके विचारोंकी स्थापना कैसे और कब संभव होगी या हो सकती भी है या नहीं यह प्रश्न विचारणीय है। मानी हुई बात है, कि युक्ति-संगतता ने सृष्टि के इतिहास में इस कल्पना को अभी कोई प्रश्रय नहीं दिया और न निकट भविष्य

में ही ऐसी आशा है।

टॉल्स्टॉय और गाँधीजी दोनों ईश्वरवादी रहे। सम्पूर्ण संसार में सुख और शांति लाने के लिये चिन्तकों, नेताओं, विद्वानों, दार्शनिकों, महात्माओं, साहित्यिकों और राजनीतिज्ञों ने अनेक दृष्टिकोणों से विचार किया है; भूतकाल तथा उनके अपने ही काल में घट रहे जीवन का यथार्थ विश्लेषण भी उन्होंने किया। व्यक्तिगत जीवन की उच्चता के मार्ग भी उन्होंने सुझाए; धर्म, समाज और समाज-पद्धतियाँ भी उन्होंने क़ायम कीं और जनता ने उनका साथ दिया; लेकिन वह सब सुधारवाद तक ही सीमित रहा, फटे में थेगड़ा लगाने के समान। उन सबने अच्छे की आशाएँ भर कीं, प्रयत्नवादको, सिर्फ न भूलते हुए; लेकिन ईश्वर भाग्य और केवल कामनाओं-शुभ पर भरोसा रखते हुए। उन सबके विचार-दर्शनों में समग्र जीवनकी शुभ-व्यवस्था लाने के लिये आमूलाग्र क्रान्ति या क्रान्तिकारी परिवर्तनों की बात भी कही गयी है, उनके लिये वैसे प्रयत्न भी किये गये हैं; लेकिन उन परिवर्तनीय तत्त्वों से समग्र जीवनकी चिन्ता अब तक आमूलाग्र नष्ट नहीं हुई, या उनसे नष्ट हो जायगी, ऐसा विश्वास भी पैदा नहीं हुआ। विकल्पमें समाजके लिये ऐसी कोई घटना वे नहीं दे सके कि उनकी ही रायका 'ईश्वर-राज्य' स्थापित हो सके। हमारे सबके नित्य-जीवनके अनुभवोंमें यह बात घट रही है। अराजकवाद या टाल्स्टाय के 'ईसाइजनकी स्वतन्त्रता' अथवा गाँधीजी के 'रामराज्य' कल्पना भी विचार की ही बात है। लेकिन वे महान मानव प्रेरक अवश्य रहे हैं। जीवन के स्पंदन को उन्होंने तीव्र किया है और शुभ तथा सही जीने का आभास उनकी वजह से हमारे जीवन में भासमान हुआ है। प्रगतिशीलता उनसे अवश्य मिली है; लेकिन वह भी कब? जब कि उन्होंने अपने विचार-मंथन—क़यासों को जनशक्ति के साथ मेल कर दिखाया। जन-जन का सुख, जन-जन के संघटित, सामूहिक प्रयत्नोंसे ही अवतीर्ण किया जा सकता है, और जहाँ, 'प्रभु' का विना जाने प्रायः लोप ही है। ऐसे ही जन-आन्दोलनों में इन जननायकों के चरण अग्रगामी रहे हैं, जैसे बापू के चरण सत्याग्रहके आन्दोलन में। 'ईश्वर' के लिये तो बापूने स्वंय अपने गत जुहू-निवास के दरमियान एक मुस्लिम विद्वान के प्रश्न

के उत्तर में कहा था कि "ईश्वर' तर्कजन्य नहीं, वह तो श्रद्धाजन्य है।" तबके हरिजन में इसका उल्लेख है। सत्य-कथन और सत्य-जीवन ही तो बापू के उद्देश्य थे, तभी उन्होंने विना लाग-लपेट के यह सच बात कह दी। और टालस्टाय ने भी इसी पुस्तक में कि "ईश्वर की खोज का यह अनुरोध मेरे विचार-तर्क की ओर से नहीं था; वह तो मेरे भीतर की एक अनुभूति थी, जो मेरी विचारसरणीके ठीक विरुद्ध पड़ती थी। वह एक प्रकार का भीतिका भाव (अभावके एवजमें—प्रकाशक) था; अपने से बाहर की चीजों के बीच, मैं अपने को अनाथ और नितांत एकाकी पा रहा था।"

विचार-परंपराका कोई अंत नहीं है। विचार विज्ञान की कसौटी पर ही सच हुए हैं। "श्रद्धा' जिस प्रकार की, अज्ञेय के प्रति अंतरात्मा की चीज है; और 'अनुभूति' का आधार जो निराकार है; वह अब तक विज्ञान की कसौटी पर सिद्ध नहीं हो पाया।

टालस्टाय ईसाई था। जीवन की हीनतामें फीकापन आनेपर जब उसने आदर्श की ओर उन्मुख होना चाहा, वहाँ मात्र ईसाई--धर्मदेशना उसके सामने आकर रह गई। पर उसे और कुछ नहीं सूझा। वह सत्यशोधक था; ईमानदारी उसमें कूट-कूट कर भरी थी, तभी तो अपनी डायरी में अपने पापों पर अमल न करने के अपने निश्चयों को पुनः पुनः वह लिखता और प्रतिज्ञाएँ करता। लेकिन फिर भी आचरण के अभ्यास की वजह से उन संकल्पों को वह पूरा नहीं कर पाता। जन-संघर्ष से ही यह सब सम्भव हो सकता था, यह कल्पना उसके पास तक नहीं पहुँची, इसीलिए अंत में 'संतोष' उसे ईश्वर मिलने के सिवा और किसी में नहीं रह गया था। ज़्वीग ने ही लिखा है—

"किसी दम्भ या चिन्तनात्मक जिज्ञासा से प्रेरित होकर वह ईश्वर-प्राप्ति और ईश-चिन्तन के मार्ग पर नहीं गया था। ठीक इसके विपरीत, अपनी इच्छा के विरुद्ध बरबस उसने अपने को उस ओर खिंचते पाया। टालस्टाय तो इस दुनिया का अत्यन्त पार्थिव व्यक्ति था। संसार के ऐन्द्रियिक सुख-भोगों को, जैसा उसने देखा और अनुभव किया थो, शायद ही किसी दूसरे ने किया हो। इसीलिए इसके पहले, तत्त्व-ज्ञान की ओर कभी इसकी रुझान नहीं हुई। किसी भीतरही नास्तिक प्रेरणा से

या चिन्तनमें आनन्द अनुभव करने की वृत्ति से वह कभी भी चिन्तक नहीं हो सका था; जीवनकी ऐन्द्रियिक इच्छाएँ ही (न कि उनके अर्थ), उसकी महान जीवन-कला में प्रधानरूप से उस पर हावी रही हैं। इसीसे कहता हूँ कि वह जान-बूझ कर विचार चिन्ता की ओर नहीं झुका था। अनायास ही एक आघात उसे लगा—आघात जो कि बाहर के अज्ञात अंधकार में से आया था। जीवन में सदा आत्मविश्वस्त और निश्चित क़दम से आगे बढ़ते ही चले जानेवाले इस बलवान ठोस, स्वस्थ मनुष्यको इस आघात ने लड़खड़ा दिया और उसके हाथ किसी सहारे की खोज में छटपटाने लगे।"

और दूसरी ओर जैसा कि ज़्वीग लिखता है—"जब कि रूसियों ने मात्र टॉल्स्टॉय की प्रगतिशीलता को अपनाया, गाँधी ने उसके अप्रतिकार के सिद्धांत को अपनाया है, और अपनी जाति के चालीस करोड़ मनुष्यों के बीच वह पहला व्यक्ति था, जिसने सत्याग्रह के तंत्र का संगठन किया।"

टालस्टाय और गाँधीजी में यही भेद था। गाँधीजी ने 'कल्याण' जहाँ जन-संघर्ष में देखा, और प्रत्यक्ष उसका नेतृत्व किया; टालस्टाय को वहाँ उस संकल्प तक न पहुँच सकने के कारण अंत में निराश होकर मरना पड़ा।

ज़्वीग लिखता है—

"अपने युग में टालस्टाय का प्रभुत्व इतना बढ़ा हुआ था कि बहुत से लोग टॉल्स्टॉय के इस सामाजिक सिद्धांत को अमल में लाने के लिए उतावले हो उठे। कुछ स्थानों पर कुछ खास लोगों ने, अपरिग्रह और अहिंसा के आधार पर उपनिवेश बसा कर इन सिद्धान्तों को आजमाने की कोशिश भी की। पर इन प्रयत्नों के बड़े ही निराशाजनक परिणाम सामने आये; और टालस्टाय स्वयं अपने कुटुम्ब तक में, टालस्टायवाद के बुनियादी उसूलों को क़ायम करने में विफल हुए। अपने सिद्धांतों के साथ अपने व्यक्तिगत जीवन का सामंजस्य स्थापित करने के लिए उसने बरसों परिश्रम किया; शिकार के अपने प्यारे शौक को उसने तिलांजलि दे दी, इसलिए कि उसके हाथों प्राणियों की हत्या नहीं होनी चाहिये; जहाँ तक सम्भव हो सकता

था, वह रेल-मार्ग से यात्रा नहीं करता था; अपने लेखनकार्य से आमदनी उसे होती थी, उसे या तो वह अपने कुटुम्बियों को देता था या फिर वह परमार्थ में चली जाती थी। उसने मांस खाना छोड़ दिया था; क्योंकि जीवित प्राणियों के बलात्-करण के बिना मांसाहार संभव नहीं है। वह स्वयम् खेतों में हल चलाता था; एक गाढ़ा देहाती कोट पहन कर ही वह बाहर निकल जाया करता था और अपने हाथों से ही अपने जूतों के तलवे वह ठीक कर लिया करता था।

"पर बाहरी वास्तविकता के दबाव पर उसके विचार विजय नहीं पा सके, और उसके जीवन की सबसे बड़ी ट्रेजेडी तो यह थी कि उसके अपने कुटुम्ब और उसके निकटतम सम्बन्धियों और प्रियजनों में उसके विचारों को सबसे कम प्रश्रय मिला था। उसकी पत्नी उससे बहुत अलग पड़ गई। उसके बच्चे यह नहीं समझ सके कि अपने पिता के सिद्धान्तों के खातिर उन्हें क्यों ग्वालों और किसानों के बच्चों की तरह पर्वरिश किया जा रहा है? उसकी लिखावट की 'सम्पत्ति' पर उसके सेक्रेटरी और अनुवादक शराब पिये हुए कोचवानोंकी तरह लड़ने लगे। उसके आसपास के लोगों में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जिसने इस भव्य प्रकृति-पूजक के जीवन को एक सच्चे ईसाई के जीवन के रूप में स्वीकार किया हो। और जैसा कि उसकी डायरी से जाहिर है, टाल्स्टाय ने स्वयं ने भी अन्त में यह समझ लिया था कि एक-प्रभुत्व के साथ किये गये अपने आदर्श को प्रचारित करने में उसकी अपनी बौद्धिकता और अभिमान ही सबसे अधिक घातक सिद्ध हुए। उसकी डायरी में हम यह प्रश्न पढ़कर काँप उठते हैं, 'लीयो टाल्स्टाय, क्या तुम अपने सिद्धांत के अनुसार जी रहे हो?' और फिर वह कड़ुवा उत्तर 'नहीं। मैं लज्जा से मरा जा रहा हूँ। मैं अपराधी हूँ और घृणा करने के लायक हूँ।' और वह तिरासी बरस का बूढ़ा आदमी अपनी मौतका आगमन अनुभव करके रातोंरात अपने घर से भाग खड़ा होता है, और एक छोटे-से रेल्वे स्टेशन पर अपने पवित्रतम प्रयोजन में निराश और एकाकी रह मर जाता है।"

जैसा कि हम ऊपर विचार कर आये हैं समग्र जीवन की सुख-शांति के उप-

युक्त समाज-व्यवस्था क्या हो? उसकी रूपरेखा बापू भी तैयार नहीं कर गये। हमने देखा मृत्यु से पूर्व मनुष्य-शक्ति और प्रयत्नवाद पर आस्था होते हुए भी स्वराज्य आने के बाद बापू ने जब सुख, शांति, और सु-राज्य नहीं देखा, तो फिर उनके जीवन में उनका व्यक्ति ही उद्दाम हो उठा। वे उपवास करने लगे, नित्य-प्रार्थना में प्रभुपर ही उनका विश्वास अधिकाधिक मुखरित हो उठा और अंतमें कई बार उन्होंने इस तरह के निराश वचन भी कहे कि मैं अब ये जुल्म, कष्ट और अन्याय नहीं देख सकता; प्रभु की इच्छा यदि मुझे जीवित रखने की नहीं है, तो मुझे उठा लेगा आदि।

बापू और टॉल्स्टॉय जैसी विभूतियोंकी ये मौतें विचार माँगती हैं। मनीषियों से गंभीर दर्शन और ठीक ठीक राह चाहती हैं। सृष्टि की रचना में सदैव पूर्वज विचारक ने उत्तराधिकारी विचारक को प्रगतिशीलता दी है। टाल्स्टाय ने गाँधीजी को और गाँधीजी ने जवाहर को यही प्रगतिशील आभूषण पहनाया है। एक और विचार पैदा हुआ है। गॉगेल की प्रगतिशीलता से मार्क्स, एंगेल्स्, लेनिन और स्टेलिन क्रमशः प्रगट हुए। ये 'प्रभुवादी' परंम्परा से बिल्कुल अलाहिदे हैं। ये विचारक, संपूर्ण जीवन की शुद्धता के लिये, जन-जन की सुख और शांति के लिये अपने मार्ग पर चलते हुए इतने आश्वस्त और मग्न हैं कि सृष्टि में विचारधाराके क्षेत्र में आज दो स्पष्ट मोड़ हो गये हैं। इनका दावा है—'मनुष्य' पर ही इनकी आस्था सब कुछ है। ये कहते हैं समाजका कोई भी व्यक्ति कष्टमय, उत्पीड़ित शोषित और व्यथित नहीं रह सकेगा—ऐसी दुनिया वे लायँगे। उनका कहना है, हमारा मार्ग वर्ग-संघर्ष जरूर है, लेकिन वर्गविहीन समाज-व्यवस्था की स्थापना करना हमारा उद्देश्य है, और आज तो उस सुखद मानव-समाज-व्यवस्था लाने के प्रयास में कितनी हद तक प्रत्यक्ष रूप से वे सफल हुए हैं, यह बतलाने के लिए दुनिया के एक महान् भूखंड रूस को देख आने का वे संकेत भी कर रहे हैं।

टॉल्स्टॉय आश्चर्यचकित था कि ईसाईजन ही 'ईसाईजन की स्वतंत्रता' की बात कह कर उत्पीड़न और शोषण को बनाए हुए थे। बापू दुखी थे कि हिन्दू और मुसलमान 'प्रभु' तथा 'खुदा' के अनुयायी ही धर्म-राज्य की स्थापना नहीं कर रहे हैं।

और फिर ये ही लोग मार्क्सवादी नयी विचारधाराको प्रतिगामिता की ओर झुका ले जानेवाली कहकर प्रचार कर रहे हैं। जब कि मार्क्सवादी नये लोग देश-देश में क्रम-क्रमसे उस समाज-व्यवथा की स्थापना के जरिये, इन पुरान-पंथियों के प्रचार की व्यर्थता सिद्ध कर रहे हैं। दोनों ही जोर पर हैं। हमारा काम है विचारों को प्रकाशन देना, विचार-संघर्ष के लिए साहित्यका प्रकाशन कर देना; टाल्स्टाय इसी दृष्टि से प्रकशित आपके सामने है। इसको दुनिया पर घटा कर देखिये, भूत पर देखिए, वर्तमान देखिये और भविष्यका मार्ग निर्धारित कीजिये।

टालस्टॉय, गाँधीजी और ज़्वीग तीनों के प्रति हम अवनत मस्तक हैं।

मूल अंग्रेजी प्रकाशक कैसेल कं. लंदन के भी हम कृतज्ञ हैं; उनकी प्रकाशित पुस्तक का यह अनुवाद है।

भाई हरिशंकर शर्मा ने प्रूफ शुद्धि में सहारा दिया है। श्री कन्हैयालाल शाह ने छाप देने में जो तत्परता दिखाई है, दोनों के हम कृतज्ञ हैं।

अशुद्धियाँ रह ही जाती हैं। अगले संस्करण में वे न रहेंगी।

टॉल्स्टॉय और गांधीजी या अन्य किसी भी विचारक का कौन-कौन-सा साहित्य भिन्न-भिन्न भाषा में उपलब्ध है, जिज्ञासु पाठकों को जानकारी देनेके लिये हम सदैव प्रस्तुत हैं।

—भानुकुमार जैन

टालस्टाय

लेखक

स्टिफेन ज़्वीग

टालस्टायके बाद उसके राष्ट्रके दूसरे सबसे महान रूसी लेखक तुर्गनेवने २७ जुलाई १८८३ को अपने मित्र टालस्टायके नाम यासनाया-पोलीआनामें एक बड़ा ही पुरअसर पत्र भेजा था। कई बरसों से बड़ी बेचैनीके साथ वह इस बात पर ग़ौर कर रहा था कि टालस्टाय, जिसका वह अपनी जातिके सबसे बड़े लेखकके रूपमें आदर करता था, साहित्यसे हटकर अपनेको एक धार्मिक नैतिकतामें खोये दे रहा है। प्रकृति और मनुष्यके चित्रणमें जिसकी सफलता अद्वितीय मानी जाती थी, उस व्यक्तिकी टेबल पर आज धर्मग्रन्थों और बाइबिलके सिवा और कुछ भी नहीं रह गया था। तुर्गनेवके मनमें यह भय पैदा होगया था कि गॉगलकी तरह टालस्टाय भी अपनी परिपक्व सर्जक प्रतिभा के ये निर्णायक बरस धार्मिक चिन्तनमें बर्बाद न कर दे, जो कि आजकी दुनियाके लिए निरर्थक है। इसलिए अपनी आख़री बीमारीके दिनोंमें वह अपनी क़लम पकड़ने दौड़ा—कहेंकि पेन्सिल, क्योंकि क़लम पकड़ने में उसका कमज़ोर हाथ अब असमर्थ हो गया था—और उसने अपने युगकी सबसे महान सार्वभौम प्रतिभाके नाम एक दिल हिला देनेवाला प्रार्थना-पत्र लिखा। उसने लिखा कि "यह एक मरते हुए आदमीकी अन्तिम और हार्दिक विनती है: साहित्यमें लौट आओ! वही तुम्हारी सच्ची देन है।—ओ

रूसी भूमिके महान् कवि ! मेरी यह विनती सुनो ?"

मौतके बिस्तर परसे आनेवाली इस पुकारका (वह पत्र बीचमें ही अधूरा छूट गया था, क्योंकि तुर्गनेव लिखता है कि उसकी शक्ति चुक गई थी) टाल्स्टायने तुरन्त कोई जवाब नहीं दिया; और आखिर जब उसने उत्तर देना चाहा, तब बहुत देर हो चुकी थी। टाल्स्टायने उसकी विनतीपर ध्यान दिया है या नहीं, यह जाननेके पहले ही तुर्गनेव इस दुनियासे उठ गया था। पर टाल्स्टायके लिए भी शायद अपने मित्रकी उस पुकारका उत्तर देना और उसे स्वीकार करना आसान बात नहीं थी, क्योंकि किसी दम्भ या चिन्तनात्मक जिज्ञासासे प्रेरित होकर वह ईश्वर-प्राप्ति और ईश-चिन्तनके मार्गपर नहीं गया था। ठीक इसके विपरीत, अपनी इच्छा के विरुद्ध, बरबस उसने अपनेको उस ओर खिंचते पाया। टाल्स्टाय तो इस दुनिया-का: एकदम पार्थिव व्यक्ति था, संसारके ऐन्द्रियिक सुख-भोगोंको, जैसा उसने देखा और अनुभव किया था, शायद ही किसी दूसरेने किया हो। इसीलिए इसके पहले तत्त्व-ज्ञानकी ओर कभी उसकी रुझान नहीं हुई। किसी भीतरकी तात्त्विक प्रेरणासे या चिन्तनमें आनन्द अनुभव करनेकी वृत्तिसे वह कभी भी चिन्तक नहीं हो सका था; संसारकी ऐन्द्रियिक इच्छाएं ही (न कि उनके अर्थ), उसकी महान जीवन-कलामें प्रधान रूपसे उसपर हावी रही हैं। इसीसे कहता हूं कि वह जान-बूझ कर विचार-चिन्ताकी ओर नहीं झुका था। अनायास ही एक आघात उसे लगा—आघात जो कि बाहरके अज्ञात अंधकारमेंसे आया था। जीवनमें सदा आत्मविश्वस्त और निश्चित रूपसे आगे बढ़ते ही चले जानेवाले इस बलवान, ठोस, स्वस्थ मनुष्यको इस आघातने लड़खड़ा दिया और उसके हाथ किसी सहारेकी खोजमें छटपटाने लगे।

उसके करीब पचासवें वर्षमें वह जो भीतरसे एक धक्का टाल्स्टाय-को लगा, उसका न कोई नाम ही दिया जा सकता है और न उसका कोई प्रकट कारण ही सामने था। इन्हीं दिनों, सुखी जीवनके लिए आवश्यक [illegible] उसे [illegible] पूर्ण [illegible] मात्रामें प्राप्त हुए थे। [illegible] था, शारीरिक दृष्टिसे शायद अपने समवयस्कोंमें वह

सबसे अधिक स्वस्थ था; उसकी बौद्धिकता बड़ी ही ओजस्विनी थी और उसकी कलामें एक अद्भुत ताजगी थी। एक बड़ी जमींदारीका वह स्वामी था, इसीसे उसे कोई आर्थिक चिन्ताएँ भी नहीं थीं। एक ओर जहाँ उसे एक बड़े ही आला अमीर और कुलीन खान्दानकी प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वहाँ दूसरी ओर, उससे भी बढ़कर, रूसी भाषाके सबसे बड़े लेखक और समस्त भूमण्डलके एक प्रख्यात कथाकार होनेका यश उसे प्राप्त था। उसका कौटुंबिक जीवन सम्पूर्णतया सुखी था : उसके पत्नी थी और बच्चे थे, जीवनसे असन्तुष्ट होनेका कोई भी बाहरी कारण उसके सामने नहीं था।

तभी अन्धकारके भीतरसे एकाएक यह आघात आया। टाल्स्टायने अनुभव किया कि उसके जीवनमें कोई भयानक घटना घटी है—"जीवनकी धारा रुक गई, जीवन अशुभ हो गया" उसने अपने अंग-अंगको अनुभव किया, मानो वह अपनेहीसे पूछना चाहता था कि उसे क्या हो गया है—क्यों एकाएक यह उदासी छा गई है, क्यों यह भयका भूत उसपर हावी हो गया है, क्यों कोई भी चीज उसके मनको नहीं रुचती—उसे प्रभावित नहीं करती। वह केवल यही अनुभव करता था कि कामसे उसका मन उचट गया है, उसकी पत्नी उसके लिए अजनबी हो पड़ी है, अपने बच्चेमें उसे कोई रस नहीं रह गया है। जीवनकी एक घोर ग्लानि उसे धर दबाए हुए थी, और अपनी शिकारी बंदूकको उसने इसीलिए तालेमें बंद कर दिया था कि कहीं निराशाके आवेगमें वह अपनी ही ओर वह बंदूक न घुमादे। "उन दिनों उसने पहली बार यह साफ़ तौरपर महसूस किया ['अन्ना कैरेनिना'के लेविन (पात्र) के रूपमें अपनी ही तस्वीर खींचते हुए यह लिखता है] कि प्रत्येक प्राणीके लिए और स्वयं उसके लिए भी, जीवनमें सिवा पीड़न, मौत और निरन्तर क्षयके, और कुछ नहीं है; इसीलिए उसने निश्चय कर लिया था कि इस तरह वह जिन्दा नहीं रह सकता। या तो जीवनका कोई अर्थ उसे जाननेको मिलना चाहिए और नहीं तो फिर वह अपनेको गोली मार लेगा।"

इस आन्तरिक संघर्षको, जिसने टाल्स्टायको एक द्रष्टा, चिन्तक और जीवन-

[illegible] बनाया, कोई नाम देना निरर्थक होगा । सम्भवतया यह विषादके एक खास मुकामकी मनोदशा थी, जिसके पीछे शायद बुढ़ापे और मौतका भय था, एक मानसिक दुर्बलता थी जिसने उसकी सारी चेतनाको पंगु बना दिया था । पर एक बुद्धि-जीवी व्यक्ति और उसमें भी विशेष रूपसे एक कलाकारका यह स्वभाव होता है कि वह अपने भीतरी संघर्षोंका अध्ययन करता है और उनपर विजय पाने-की कोशिश करता है । शुरूमें एक अज्ञात बेचैनी टाल्स्टायपर अधिकार जमाने लगी । वह यह जानना चाहता था कि उसे क्या हो गया है; जो जीवन उसे अब तक इतना सार्थक, इतना सम्पन्न, इतना वैभवपूर्ण और वैविध्यसे भरा दिखाई पड़ता था, वही एकाएक अब क्यों इतना छिछला और सारहीन मालूम होने लगा था ! अपनी उस भव्य कथाके एक पात्र आइवन-इलिचकी तरह जब वह मौतके पंजोंको अपने ऊपर अनुभव करता है, तो चौंककर पहली बार वह अपने आपसे पूछता है, "शायद जिस तरह जीना चाहिए था, उस तरह मैं नहीं जिया हूँ ?" टाल्स्टाय दिन-प्रतिदिन अपने ही जीवनकी कसौटीपर अपने आपको परखने लगा और जीवनके अर्थकी खोज करने लगा । विचार-चिन्तन में कोई मौलिक रस होनेके कारण या किसी बौद्धिक जिज्ञासासे प्रेरित होकर वह सत्य-शोधक और दार्शनिक नहीं बना था; वह तो दार्शनिक बना था निराशासे अपनी आत्म-रक्षा करनेके लिए । ठीक [illegible] (एक दार्शनिक) की तरह ही; उसका चिन्तन तो खाईके किनारेपर खड़े होनेवाला [illegible] था; मृत्यु और उसके भयमेंसे वह जीवनको खोज रहा था । उन दिनोंकी टाल्स्टायके हाथकी लिखी एक विचित्र दस्तावेज एक कागजके टुकड़ेपर लिखी है, जिसपर उसने यह "अज्ञात वस्तु" लिख छोड़ी है, जिसे कि [illegible] देना चाहता था ।

करता हूँ इसका क्या अर्थ है; और ऐसा क्यों होता है ?

(५) मुझे कैसे जीना चाहिए ?

(६) मृत्यु क्या है—उससे मैं अपनेको कैसे बचा सकता हूँ ?

टॉल्स्टॉयके जीवनके अगले तीस बरसोंमें, साहित्यसे भी बढ़कर जो उसके जीवनकी सबसे बड़ी सार्थकता थी और जो प्रयोजन रहा आया था, वह है—ऊपर लिखे सवालोंका जवाब देना कि वह स्वयं और यह सारी दुनिया सही तरीक़ेसे कैसे जिन्दा रहे ?

जीवनके अर्थकी खोजका सबसे पहला क़दम बड़े ही तार्किक रूपसे सामने आता है। 'युद्ध और शान्ति' नामक उसके उपन्यासमें, इतिहासके दर्शनके रूपमें जो उसकी थोड़ी-सी नकारात्मक वृत्ति सामने आई है, उसके बावजूद टॉलसटॉय कभी भी श्रद्धालु नहीं रहा; भीतर और बाहरसे उसने सदा एक शांत, स्वतंत्र, ऐश्वर्यपूर्ण और उद्योगशील जीवन विताया था। एकाएक दर्शनके क्षेत्रमें आ जानेपर वह अधिकारी दार्शनिकोंकी ओर झुका—यह जाननेके लिए कि मानव-जीवनके प्रयोजनके बारेमें दार्शनिकोंकी क्या राय है। हर प्रकारकी दार्शनिक पुस्तकें उसने पढ़ना शुरू कर दिया। उसने शॉपेनहार और प्लेटो पढ़ा; कान्ट और पास्कल पढ़ा, उनसे यह जाननेके लिए कि जीवनके अर्थकी व्याख्या उन्होंने कैसे की है। पर न तो दार्शनिक और न समूचे विज्ञान ही उसके प्रश्नका उत्तर दे सके। टॉलसटॉयको यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि इन दानिशमन्दोंने उन्हीं प्रश्नोंका उत्तर अत्यन्त स्पष्ट और सुनिश्चित रूपसे दिया है, जिनका प्रत्यक्ष जीवनसे कोई सम्बन्ध नहीं है; पर जहाँ भी एक निश्चित सुझाव और मार्ग-दर्शनका सवाल उनके सामने रक्खा गया है, वे उसे साफ़ टाल गए हैं; और जिस इस बातको वह सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझता था उसे समझानेकी कोशिश किसीने भी नहीं की है कि "पार्थिव दृष्टिसे, कार्य-कारणकी दृष्टिसे तथा देश-कालकी दृष्टिसे मेरे जीवनका क्या अर्थ है ?"

इसीलिए उसका अगला क़दम यह हुआ कि वह समाधान पानेके लिए दार्शनिकोंको छोड़ धर्मोंकी ओर मुड़ा। ज्ञानने उसे निराश कर दिया था, इसीसे वह

जानेकी जरूरत नहीं थी। एक आदमीकी व्यक्तिगत निराशाने एक अधिकारिक सिद्धान्तका रूप ले लिया, समूचे बौद्धिक और नैतिक चिन्तनके सुधारका मार्ग उसमेंसे निकला और उसके परिणामस्वरूप एक नवीन समाज-शास्त्रका निर्माण हुआ। एक एकाकी व्यक्तिका भयसे प्रेरित वह मूल प्रश्न,—"मैं किसलिए जी रहा हूँ, और मुझे कैसे जीना चाहिए?"—धीरे-धीरे समूची मानवताका एक शासक सिद्धान्त बन गया, कि "तुम्हें इस प्रकार जीना चाहिए!"

एक हजार वर्षके अनुभवने चर्चको इस खतरेसे सतर्क कर दिया है, जो एक व्यक्ति द्वारा धर्म-देशनाओंको दिये गए नवीन अर्थोंके कारण पैदा होता है। चर्च इस बातको अच्छी तरहसे जानता है कि कोई भी व्यक्ति यदि अक्षरशः बाइबिलके वचनोंके अनुसार अपने जीवनका निर्माण करता है, तो वह निश्चित ही चर्चके अधिकारिक नियम-विधान और शासनके क़ानूनोंके साथ संघर्षमें आयेगा। टॉलसटॉयके सिद्धान्तोंकी सबसे पहली पुस्तक, 'मेरा आत्म-निवेदन (My Confasstion)' पर शासनके क़ानूनने रोक लगा दी; और उसकी दूसरी पुस्तक 'मेरा धर्म (MyF·aih)' को पवित्र-धर्म सभा (सिनॉड) ने वर्जित क़रार दे दिया, और सो भी एक अर्सेतक, महान लेखक टॉल्स्टॉयके सम्मानका लिहाज करके चर्चकी सत्ता उसके खिलाफ़ आखिरी क़दम उठानेसे हिचकिचाती रही, पर आखिर उन्हें टॉल्स्टॉयका बहिष्कार करना ही पड़ा। चूँकि टॉल्स्टॉयके समस्त प्राणकी गहराइयाँ हिल चुकी थीं, इसलिए वह तो सहज ही चर्चकी सारी बुनियादों तथा सरकार और धर्मके शासनकी अवज्ञा करने लगा था। जिस तरह—वालडेंशियनो, अलबिजेंशियनों, अनाबेप्टिस्टों तथा क्रांतिके किसान उपदेशकोंने और इसी तरहके अन्य लोगोंने क्रिश्चियन धर्मको आदि-क्रिश्चियन धर्मके रूपमें फिरसे बदलनेकी तथा बाइबिलके वचनोंका अक्षरशः और शब्दशः पालन करनेकी कोशिश की थी, ठीक उसी प्रकार टॉल्स्टॉय भी निश्चित रूपसे सरकारका एक अडिग विरोधी, तथा आधुनिक युगका सबसे बड़ा अराजकवादी और समुदायविरोधी होने जा रहा था। उसके बल, उसके निश्चय, उसकी सहिष्णुता और उसके अबाध साहस-

ने मिलकर जहाँ एक ओर उसे लूथर और काल्विन जैसे प्रचण्ड धर्म-सुधारकोंसे भी आगे बढ़ा दिया था, वहाँ दूसरी ओर समाज-सुधारके क्षेत्रमें स्टिर्नर जैसे साहसिक अराजकवादी और उसकी परम्परासे भी आगे ले जा कर उसे खड़ा कर दिया था। एक अर्सेसे आधुनिक सभ्यता और उन्नीसवींके शताब्दिकी तत्कालीन समाजने अपने सारे न्याय और अन्यायके साथ, अपने युगके इस महानतम साहित्य-शिल्पीसे अधिक अधीर और खतरनाक विरोधीका सामना नहीं किया था। जो व्यक्ति अपने युगान्तर-कालका सबसे बड़ा युग-निर्माता कलाकार था, समाजका एक सफल विध्वंसकारी आलोचक भी उस समय उसे छोड़कर दूसरा कोई नहीं था।

लेकिन चर्च और सरकार इन कृतनिश्चय व्यक्तित्व-वादियोंके खतरेको जानते हैं, और वे यह भी जानते हैं कि शुद्धतम सैद्धान्तिक शोधके प्रयोग भी धीरे-धीरे आखिर व्यावहारिक क्षेत्रमें आकर ही रहते हैं; और यह भी एक निश्चित बात है कि सुधारकोंमें जो सबसे ज़्यादा ईमानदार और प्रतिभावान् होते हैं, वही इस पृथ्वी पर सबसे बड़ी उलझनें पैदा करते हैं। चर्च और सरकार जानते हैं कि आदिम-क्रिश्चियन धर्मका उद्देश्य एक स्वर्गीय राज्य स्थापित करना था न कि पार्थिक राज्य; वे यह भी जानते हैं कि उसकी धर्माज्ञाएँ सरकारके लिए अंशतः घातक हैं, वे शासनसे इनकार करती हैं, और चूँकि कोई भी धार्मिकजन क्राइस्टको सीज़रके ऊपर माननेको बाध्य है, इसीसे वे धर्माज्ञाएँ किसी भी राज्य-भक्त प्रजाके कर्तव्यों और किसी भी शासनके विधान और क़ानूनोंके साथ निश्चित रूपसे संघर्षमें आयेंगी। लेकिन टॉल्स्टॉयको बहुत धीरे-धीरे यह महसूस हो सका कि उसकी सत्य-शोध और छान-बीनने उसे समस्याओंके घने जंगलमें लाकर खड़ा कर दिया है। पहले तो उसने ख़याल किया कि वह सिर्फ अपने व्यक्तिगत जीवनको व्यवस्थित करने की, तथा अपनी वैयक्तिक रुझानको धर्म-देशनाओंके अधिकसे अधिक अनुरूप बनाकर अपनी आत्माकी शांति प्राप्त करने की कोशिश कर रहा है। उसका उद्देश्य इसके सिवाय और कुछ नहीं था कि वह प्रभुके साथ और अपने आपके साथ शांतिपूर्वक जीवन बिता सके। लेकिन अनजानेही वह मूल प्रश्न, कि "मेरे जीवनमें कहाँ चूक है?" इस सर्व-

सामान्य प्रश्न, "हम सबोंके जीवनमें कहाँ चूक है?" में बदल गया, और इस प्रकार वह एक समूचे युगकी आलोचना हो गई। उसने अपने आसपास देखा और पाया—जो कि उन दिनों रूसमें पाना कोई मुश्किल बात नहीं थी—समाजकी व्यवस्थामें बड़ी भारी असमानता है, धनिक और गरीब, वैभवशाली और दरिद्रके बीच बहुत बड़ी खाई पड़ी हुई है। अपनी व्यक्तिगत खामियोंसे परे उसने अपने उच्चवर्गके लोगोंके आम अन्यायोंको देखा, और अपनी पूरी ताक़तसे इस अन्याय का शोधन करनेको उसने अपना पहला कर्त्तव्य बना लिया। यहाँ भी उसने बड़े धैर्यसे काम लिया; रहस्यपूर्ण वेधक दृष्टिवाले इस अचल कठोर व्यक्तिको इस राहपर बहुत दूर तककी मंजिल तय करनी थी, लेकिन अराजकतावादी और एक मौलिक क्रान्तिकारी होनेके बहुत पहलेही एक परोपकारी और उदाराशय व्यक्तिके रूपमें उसने अपना काम आरम्भ किया था। इत्तिफाक़से एक बार जब १८८१में वह मास्कोमें ठहरा हुआ था, वह पहली बार सामाजिक समस्या के क़रीब आया। अपनी किताब 'हमें क्या करना होगा?' में एक महान नगरके सामूहिक-पीड़नके अपने पहले दर्शन को उसने थर्रा देनेवाले रूपमें चित्रित किया है। यह सच है कि उसकी सावधान नजरने इससे पहले भी हजारों बार अपनी पैदल यात्राओं और दौरोंमें गरीबी को देखा था, लेकिन वह तो गाँवों और देहातोंमें इधर उधर बिखरे लोगोंकी व्यक्तिगत गरीबी थी; (वह यांत्रिक सभ्यतासे सामूहिक यंत्रणा रूप बन निपजनेवाली, औद्योगिक शहरोंमें एकत्रित समूचे सर्वहारा वर्गकी गरीबी नहीं थी, जो कि एक युगकी खास उपज थी।) बाइबिल सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को अमलमें रखते हुए सबसे पहले टाल्स्टायने उस लोक-पीड़नका निवारण जरूरी चीजोंके वितरण, भेंटों, तथा संगठित पारमार्थिक सेवा और दानोंके द्वारा करना शुरू किया: पर न कुछ समयमें ही इस प्रकारकी हर व्यक्तिगत चेष्टाओंकी निरर्थकता उसे समझमें आ गई और उसने अनुभव किया कि "सिर्फ़ पैसा ही इन लोगोंके दुखी अस्तित्वोंमें परिवर्तन लानेके लिए पर्याप्त नहीं है।" मौजूदा सामाजिक-

व्यवस्थाका आमूल पुनर्निर्माण करके ही सच्चा परिवर्तन उपस्थित किया जा सकता है। समय की दीवारपर चेतावनीके वे आग्नेय शब्द उसने इस तरह लिखे हैं : "हमारे बीच, यानी अमीर और गरीबोंके बीच एक मिथ्या शिक्षाकी दीवार सदासे बनी हुई है, और इसके पहले कि हम गरीबोंके उद्धारके लिए कुछ कर सकें, हमें इस दीवार को तोड़ देना होगा। मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि हमारा धन ही आम लोगोंके पीड़न का कारण है।" मौजूदा समाज-व्यवस्थामें ही कोई खामी है: उसकी आत्माके अन्तरतममें यह बात खूब ही स्पष्ट हो गई थी, और उस दिनके बाद फिर टाल्स्टाय के सामने सिर्फ एक ही उद्देश्य था—लोगोंको शिक्षा देना, उन्हें जागृत करना, उन्हें यह सिखाना कि स्वेच्छतया कष्ट झेलकर भी इतने भिन्न-भिन्न वर्णोंमें बँटी हुई मानवता के वर्ग-भेद को वे मिटायें।

यह उन्हें एक शुद्ध नैतिक अन्तर्दृष्टिके साथ, सम्पूर्णतया अपनी स्वतन्त्र इच्छासे करना था। यहीं टाल्स्टायवादका आरम्भ होता है; क्योंकि टाल्स्टायका उद्देश्य हिंसात्मक क्रांति नहीं, बल्कि नैतिक क्रांति था, जिसके द्वारा सामाजिक समानताका यह स्तर वह पैदा करना चाहता था, ताकि मानवता एक दूसरे खूनी विद्रोहसे बच जाए। इस क्रांतिका आधार था विवेक। इस क्रांतिमें धनिकको स्वेच्छतया अपने धनका त्याग करना होगा और आलसीको स्वेच्छतया अपनी अकर्मण्यता छोड़नी होगी। तुरन्त ही श्रमका एक नया विभाजन करना होगा, जिसके अनुसार एक सहज ईश्वरीय विधानके रूपमें हमें यह स्वीकार कर लेना होगा कि कोई भी व्यक्ति दूसरे व्यक्तिके श्रममेंसे अतिरिक्त भाग नहीं ले सकेगा, और सबकी आवश्यकताएँ समान होंगी। अब टाल्स्टायको यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा था कि वैभव इसी दल-दलमेंसे पैदा होनेवाला, फूलोंसे लदा वह पेड़ है, जिसे मनुष्योंके बीच समानता-स्थापित करनेके लिए अब आमूल उखाड़ फैंकना होगा। इस विश्वासको लेकर टाल्स्टॉयने, कार्लमार्क्स और प्रौधोंसे सौगुनी अधिक कड़ुवाहटके साथ सम्पत्तिपर प्रहार करना शुरू किया। "आज धन-सम्प्रदाय ही सारी बुराइयोंकी जड़ है। सम्पदा धनिक और निर्धन दोनोंहीका पीड़न करती है। और इस तरह जिनके पास बहुत है

उनके, और जो गरीबीमें जीते हैं उनके बीच टक्कर होनेका खतरा अनिवार्य हो उठता है। सारे खुराफ़ात सम्पत्तिसे ही आरम्भ होते हैं, और जब तक सरकार सम्पत्तिके सिद्धांतको मान्य रखती है, तब तक, टॉलसटॉयके मतानुसार, वह सरकार अधार्मिक और असामाजिक है; और (चूँकि टॉलसटॉय सम्पत्तिको दूसरोंके ऋणके रूपमें मानता था) ऐसी हालतमें वह अपराधियोंके दलमें भी एक प्रधान अपराधी हो उठती है। "सरकारें और हुकूमतें सम्पत्तिके लिए षड्यंत्र रचती हैं और लड़ाइयाँ लड़ती हैं, कभी राइनके तटवर्ती प्रदेशोंके लिए, कभी अफ्रिकाके भू-खण्डोंके लिए और कभी चीन और बाल्कन प्रदेशोंके लिए; बैंकर लोग, व्यापारी, उद्योगपति और जमींदार लोग सिर्फ़ सम्पत्तिके लिये नई-नई योजनाएँ बनाते हैं, और अपने आपपर तथा दूसरे लोगोंपर अत्याचार करते हैं। महज सम्पत्तिके लिए ही अफ़सर लोग आपसमें झगड़ते हैं, धोखेबाजी करते हैं, दूसरोंको कष्ट देते हैं और आप खुद कष्ट उठाते हैं। हमारी ये अदालतें और ये पुलिस-विभाग सम्पत्तिकी ही रक्षाके लिए हैं। अपराधियोंको दण्ड देनेके हमारे ये स्थान और ये जेलें, अपराधोंके तथाकथित दमनके नामपर चलनेवाली ये सारी भयानकताएँ, यह सब सम्पत्तिकी रक्षाके लिये ही होती हैं।

इसलिए टॉलसटॉयकी समझमें, इस सब चुराए हुए मालको जमा करनेवाली सबसे जबरदस्त अपराधी हैं सरकार, जो कि मौजूदा समाजके सारे अन्यायोंकी ढाल बनकर उनकी रक्षा करती है। उसका ख्याल था कि सरकारका आविष्कार सम्पत्ति की रक्षा करनेके लिए ही किया गया था; इसी प्रयोजनको सिद्ध करनेके लिए इस सरकारने क़ानूनों, वकीलों, जेलखानों, न्यायाधीशों, पुलिस और फ़ौजोंको लेकर यह अनेक फन्दोंवाली सत्ता क़ायम की है। टॉलसटायकी मान्यता थी कि इस सरकारका सबसे भयानक और शैतानी अपराध एक सार्वभौम फौजी सत्ताका क़ायम होना था, जो कि उसकी अपनी शताब्दीका एक आविष्कार था। टॉलस्टॉयकी दृष्टिमें क्राइस्टके उपदेशों और उनकी धर्म-देशनाओंका उल्लंघन करनेके लिए एक ईसाईको उत्तेजित करनेवाली सबसे बड़ी चीज थी हुकूमतकी आज्ञाके प्रति आत्म-समर्पण करना: फादरलैंड, आजादी और स्टेट जैसे ढन्त-ढोलोंके नाम

पर सरकार द्वारा बलात उसके हाथमें पकड़ा दिये गये किसी हत्याके शस्त्रको लेकर किसी बिल्कुल अजनबी आदमीकी जान ले डालना। टालस्टायने चिल्ला-चिल्ला कर कहा कि इन रटन्त-बोलोंका मक़सद महज सम्पत्तिकी रक्षा करना और सम्पत्तिके ख्यालको एक उच्च आदर्शका रूप देनेका है। अपने इस विरोधको उद्घोषित करनेके लिए टालस्टायने सैकड़ों पृष्ठ लिख डाले और उसने इस बात पर जोर दिया कि इस कथा-कथित सभ्यताकी आजकी अवस्थामें (जिसको कि वह महज नैतिकता के इनकार की एक आड़ मानता था। शासनकी आज्ञाके मातहत लोगोंको, एक दूसरेको कत्ल कर डालनेके लिए मजबूर किया जा सकता है। यह प्रभुके शासनके विरुद्ध है, यह हमारी अन्तरात्माके नैतिक तक़ाजेके विरुद्ध है; क्योंकि "ऐसा करके मनुष्य को हम उसकी इच्छाके विरुद्ध एक ऐसी स्थितिमें ला पटकते हैं जो उसके विवेकको गवारा नहीं होती है।"

इस प्रकार धर्म-देशनाओंका अनुगामी टॉल्स्टॉय स्थायी रूपसे एक प्रगतिशील अराजकवादीके रूपमें परिणत हो गया और वह इस नतीजे पर पहुँचा कि हर समझदार नैतिक व्यक्तिका यह कर्तव्य है कि यदि सरकार कोई ऐसी माँग करे, जो ईसाइयतके विरुद्ध हो, मसलन फौजी नौकरी, तो वह उसका विरोध करे, मगर यह विरोध हिंसात्मक न होकर, सत्याग्रही-प्रतिरोध होना चाहिए; साथ ही उस व्यक्तिको स्वेच्छतया ऐसे सब काम छोड़ देने चाहिये जो दूसरोंके श्रमको शोषणपर निर्भर करते हों। आत्म-सम्मानशील लोगोंको देशभक्तकी तरह नहीं बल्कि मनुष्यकी तरह सोचना और आचरण करना चाहिए। बराबर टालस्टाय मनुष्यके इस पवित्रतम अधिकारकी घोषणा करता रहा है, कि कानूनसे भी अगर कुछ चीजें जायज हों या कानून से वे चीजें करनेके लिए मनुष्यको बाध्य भी किया जा रहा हो, पर यदि वे उसकी अन्तरात्माके विरुद्ध हों, तो मनुष्य उन्हें करनेसे इनकार कर दे; हुकूमतकी हर ऐसी आज्ञा जो उसके लेखे नैतिक न हो, वह उसके खिलाफ़ बग़ावत करे। इसीलिए वह हर ईसाईको यह आदेश करता है कि जहाँ तक मुमकिन हो वह तमाम व्यवस्थाओं और संस्थाओंसे अपनेको बचाये, वह कानूनी अदालतोंमें न जाये, वह

पद-ग्रहण न करे, ताकि वह अपनी आत्माको शुद्ध रख सके। बार-बार टाल्स्टायने व्यक्तिको इस बातके लिए प्रोत्साहित किया है कि वह शक्तिके मिथ्या और अनैतिक सिद्धान्तसे भयभीत न हो, चाहे फिर वह शक्ति अपनेको शासन और कानूनकी शक्तिके नामसे ही क्यों न पुकारे? क्योंकि अपने मौजूदा रूपमें सरकार तो स्वयम् ही छुपे हुए अन्यायकी रक्षक, वकील और एक अधिकृत पैरोकार है। टाल्स्टायकी नजरमें व्यक्तियोंके स्वच्छंद अपराधभी नैतिक दृष्टिसे इतने अहितकर नहीं हैं, जितनी कि यह बाहरसे सुव्यवस्थित और माननीय दीख पड़नेवाली इस दुश्मन सरकारकी ये संस्थाएँ अहितकर हैं। "चोर डाकू, हत्यारे और धोखेबाज सजा योग्य लोग शायद इस बातके लिए एक नज़ीर पेश करते हैं कि मनुष्यको क्या नहीं करना चाहिए और इस तरह वह लोगोंके मनोंमें पापके प्रति एक मात्र दहशत पैदा करते हैं। लेकिन जो लोग चोरी, डकैती, हत्या और तरह-तरहके जुल्म, किसी धार्मिक या वैज्ञानिक सिद्धांतका मुलम्मा चढ़ाकर जमींदार, व्यापारी या उद्योगपतिकी हैसियतसे करते हैं, वे सीधे ही दूसरोंको अपने दुष्कर्मोंका अनुसरण करनेकी शिक्षा देते हैं। ऐसे लोग केवल उन्हीं लोगोंका नुकसान नहीं करते जो उनके इन दुष्कर्मोंके शिकार होते हैं, बल्कि वे हजारों लाखोंके मनोंसे अच्छाई और बुराईका भेद मिटाकर, उनकी नैतिकता का सीधा सत्यानाश करते हैं। ईसाई पादरियोंके प्रोत्साहन और सहायतासे, जो समर्थ शिक्षित लोग, स्वयम् बिना किसी कषायके वशीभूत हुए भी जो एक मौतकी सज़ा किसी व्यक्तिको देते हैं, वह अशिक्षित मजदूरों द्वारा कषायके आवेशमें की जानेवाली सैकड़ों हजारों हत्याओंकी बनिस्बत कहीं ज़्यादा इन्सानियतको हैवान बनाने और उसे बिगाड़नेमें समर्थ होती है। एक बरसके दरमियान, किसी एक छोटेसे युद्धके नामपर भी जो नुक्सान होते हैं, जो चोरियाँ ज्यादतियाँ, डकैतियाँ और हत्यायें होती हैं, और उन्हे फिर युद्धकी गौरव-गरिमाके नामपर जो न्याय्य, अनिवार्य और आवश्यक करार दिया जाता है, झण्डे और फ़ादर-लैंड (पितृ-भूमि) के नामपर जो प्रार्थनाएँ होती हैं और युद्धके घायलोंके लिए जो पाखण्डपूर्ण चिन्ता की जाती है, यह सब कुछ, सैकड़ों बरसोंमें कषायसे प्रेरित होकर कुछ व्यक्तियोंके द्वारा की जानेवाली

लाखों डकैतियों, अग्नि-कांड और हत्याओंसे कहीं अधिक मानवताका सर्वनाश करनेवाली हैं" दूसरे शब्दोंमें सरकार और हमारी मौजूदा समाज-व्यवस्था ही सबसे बड़े गुन्हेगार हैं, यही क्राइस्टके सबसे बड़े दुश्मन हैं; ये मूर्तिमान पाप-अपराध हैं, और इसी पापके मुँहपर टाल्स्टायने अपनी तीव्रतम भर्त्सना और लांछना फेंकी है।

मानव-समाजकी एक प्रधान संस्थाके रूपमें यदि सरकार ही निश्चित रूपसे एक मात्र सबसे बड़ा पाप है, यदि वही ईसाईयतके दुश्मनका सबसे बड़ा परदा है, तो टाल्स्टायके ख्यालसे हर ईसाईका यह स्वाभाविक कर्तव्य हो जाता है कि वह इस शैतानी भूतके प्रलोभनोंसे अपनेको दूर खींच ले। एक स्वतन्त्र ईसाईको एक सरकारके रूपमें तो रूसके प्रति भी उतना ही निर्मम होना चाहिए जितना कि वह फ्रांस या इंग्लैण्डके प्रति हो सकता है; उसे राष्ट्रोंके अर्थोंमें नहीं सोचना चाहिए, बल्कि विश्व-मानवता ही उसके विचारका आधार हो। कट्टरपंथी चर्चकी तरह ही टाल्स्टाय ने सरकारकी ओरसे भी अपनेको आध्यात्मिक रूपसे यह घोषित करते हुए खींच लिया: "मैं सरकारों और राष्ट्रोंको स्वीकृति नहीं देता, न उनके बारेमें लिखकर या किसी खास सरकारकी सेवा करके, मैं उनके बीचके झगड़ोंमें ही हिस्सा ले सकता हूँ। मैं ऐसी चीज़में भी हिस्सा नहीं ले सकता, जिसकी कि बुनियाद जुदा-जुदा सरकारोंके भेद और संघर्षपर कायम है; मसलन कष्टम विभाग, चुंगी विभाग, विस्फोटक पदार्थों और शस्त्रोंका निर्माण और युद्धसम्बन्धी ऐसी ही दूसरी तैयारियाँ" एक ईसाई सरकारी संस्थाओंसे फ़ायदा उठानेकी कोशिश नहीं करेगा; सरकारके संरक्षण तले वह धनवान होनेकी कोशिश नहीं करेगा और न सरकारी कृपाके सायेमें वह अपनी जिन्दगीकी राह बनायेगा। एक ईसाईको अदालतोंमें नहीं जाना चाहिए; उसे कारखानोंकी बनी चीजें इस्तेमाल नहीं करना चाहिए, दूसरोंकी मेहनतसे बनकर आनेवाली कोई भी चीज़ उसे अपने जीवनके किसी उपयोगमें नहीं लाना चाहिये। उसे कोई सम्पत्ति या जायदाद नहीं रखनी चाहिए, उसे पैसेका लेन-देन नहीं करना चाहिए, रेल या बाइसिकल पर उसे नहीं चलना चाहिए, उसे वोट नहीं देना चाहिए और किसी सार्वजनिक पदपर नियुक्त नहीं होना चाहिए। उसे जार या और किसी भी

शक्तिके प्रति राज-भक्तिकी शपथ नहीं लेनी चाहिए; क्योंकि प्रभु द्वारा और धर्म-देशनाओंमें कहे गये शब्दोंको छोड़कर और किसीकी भी आज्ञा माननेको वह वाध्य नहीं है। अपने विवेकको छोड़कर और किसीको वह अपना न्यायाधीश स्वीकार नहीं करेगा। टाल्स्टायके लेखे जो ईसाईजन, हैं बल्कि और भी मुनासिब तौरपर यह कहें कि जो विशुद्ध अराजकवादी हैं, वह सरकारसे इनकार करेगा; इस अनैतिक संस्थासे बाहर रहकर उसे एक नैतिक जीवन जीना चाहिए। यह बिल्कुल अप्रतिकारी, इनकार कर देनेवाला, असहानुभूतिपूर्ण रुख, तथा स्वेच्छातया किसी भी कष्ट-सहन की स्वीकृति,—यही वे विशेषताएँ हैं जो एक ईसाईजनको एक राजनीतिक क्रांतिकारीसे अलग करती हैं, जो सरकारकी अवज्ञा करनेके बजाय उससे नफ़रत करता है।

टाल्स्टाय और लेनिनके बीचके सैद्धान्तिक भेदको हमें नजरन्दाज नहीं कर देना चाहिए। टाल्स्टायवाद जिस निश्चय और दृढ़तासे मौजूदा समाज-व्यवस्था की भर्त्सना करता है, उतनी ही दृढ़ता और निश्चयसे वह समाज-व्यवस्थाके प्रति हिंसात्मक प्रतिकार करनेका भी विरोध करता है, क्योंकि उस अवस्थामें क्रांति एक बुराई हिंसाको लेकर ही दूसरी बुराईपर आक्रमण करेगी। इसी सबबको लेकर हम शैतानसे नहीं लड़ सकते। टाल्स्टायके सबसे ऊँचे और गहरे सिद्धान्त "बुराई का प्रतिकार हिंसासे मत करो" का अनुमोदन करते हुए, उसकी शिक्षाएँ क्रांतिकारी और विरोधी प्रतिकारके ठीक विपरीत, व्यक्तिगत, अविरोध प्रतिकारको ही युद्धके एकमात्र सही तरीक़ेके रूपमें स्वीकार करती हैं। एक ईसाईको सरकार द्वारा होनेवाले सारे अन्यायोंको हजम कर जाना चाहिए और इस मानीमें उस सरकारको स्वीकृति ही नहीं देना चाहिए। हिंसाका मुक़ावला करनेके लिये वह कभी हिंसाका प्रयोग नहीं करेगा, क्योंकि इस तरह उसकी अपनी हिंसा ही हिंसा और बुराईके रास्तेको एक सही रास्तेके रूपमें स्वीकार कर लेगी। एक टाल्स्टायवादी क्रांतिकारी स्वयम् मार खा लेगा, पर दूसरे पर हमला नहीं करेगा; किसी बाहरी सत्ताके पद को वह स्वीकार नहीं करेगा, लेकिन बाहरकी कोई भी हिंसा उसकी आन्तरिक अहिंसाको हिला नहीं सकेगी। उसे शक्ति या सरकारपर विजय नहीं पानी है, वह

तो एक बेदरकारीसे उनका तिरस्कार कर देगा, क्योंकि अपने अन्तरंगसे वह उस सरकारका नहीं है और इसीलिये कोई भी उसके विवेकको उस सरकार का शासन झेलने कोवाध्य नहीं कर सकता।

टॉल्स्टायने बहुत साफ़ तौर पर, सारी सत्ताओंके प्रति अपने धार्मिक, आदि—क्रिश्चियन प्रतिकार, और एकविरोधी, सक्रिय वर्ग-संघर्षके बीचका भेद निश्चित कर दिया था। "जब हम क्रांतिकारियोंके सम्पर्कमें आते हैं, तो अक्सर हम यह सोचनेकी गलती कर जाते हैं कि उनके और हमारे बीच काफ़ी इत्तिफ़ाक़की गुंजायश है। हम दोनों ही का नारा है, "सरकार नहीं चाहिये, सम्पत्ति नहीं चाहिए, अन्याय नहीं चाहिए" तथा और भी ऐसी कई दूसरी चीज़े हैं। लेकिन फिर भी एक बहुत बड़ा भेद है। एक ईसाईके लिए किसी सरकार जैसी चीजका अस्तित्व ही नहीं है, लेकिन ये क्रान्तिकारी तो सरकारका ही नाश करना चाहते हैं। एक ईसाईके लिए सम्पत्ति नामकी चीज होती ही नहीं है, जब कि ये लोग सम्पत्तिको निर्मूल करना चाहते हैं। एक ईसाईके लिए सभी मनुष्य समान हैं, जबकि ये लोग असमानताका नाश करना चाहते हैं। क्रान्तिकारी, सरकारसे एक बाहरी लड़ाई लड़ता है, लेकिन—ईसाइयत तो कोई लड़ाई लड़ती ही नहीं है; वह तो भीतरके रास्तेसे ही सरकार-की बुनियादोंको खत्म कर देती है।" अगर रोज-बरोज आगे बढ़ते हुए हजारों आदमी, अपने अपने व्यक्तिगत निश्चयके साथ आत्मसमर्पण करनेसे इनकार करते जायेंगे और झुकनेके बजाय सायबेरिया भेजे जाना, कोड़े खाना और जेलोंमें डाला जाना पसंद करेंगे तो उनकी यह अविरोध बहादुरी क्रान्तिकारियोंकी संगठित हिंसासे कहीं बहुत ज़्यादा काम कर ले जायगी। एक कठोर अनुशासनके साथ पालन किये जानेवाले अप्रतिकारके व्रतसे जो धार्मिक क्रान्ति होगी, लम्बे अरसेमें जाकर एक सरकारके लिए वह क्रांति आन्दोलनों और गुप्त समितियोंके बनिस्बत कहीं बहुत ज़्यादा खतरनाक और घातक साबित होगी। दुनियाकी व्यवस्था बदलनेके लिये, मनुष्यों को स्वयम् भी बदल जाना पड़ेगा। टाल्स्टाय तो भीतरसे होनेवाली क्रान्तिका सपना देख रहा था। वह लोह-पंजरमें बद्ध मुट्ठियोंकी क्रान्ति नहीं थी, वह तो किसी भी

कष्ट-सहनके लिए तैयार रहनेवाले अटल विवेकीकी क्रान्ति थी। वह मुट्ठियोंकी क्रांति नहीं, बल्कि आत्माओंकी क्रांति थी।

यह टाल्स्टायका सरकार-विरोधी सिद्धांत, जो हमें लूथरके 'ईसाईजनकी स्वतंत्रता' नामक ट्रेक्टकी याद दिला देता है, अपने आपमें एक बहुतही भव्य, प्रत्यक्ष और तेजस्वी सिद्धान्त था। इस सिद्धान्तमें दोष वहीं आ जाता है, जब टाल्स्टाय अपनी आत्म-निर्णयकी माँगको, एक सरकारके विधायक सिद्धान्तके रूपमें परिणत कर देता है। आखिर मनुष्य अपने युगसे बाहरके किसी शून्यमें तो नहीं जीता है। जहाँ भिन्न भिन्न स्तरोंके लाखों करोड़ों व्यक्ति इकट्ठा मिलजुलकर रहते हैं, भिन्न-भिन्न प्रकारकी प्रतिभाएँ और उद्योग-पेशे जहाँ रोजमर्राकी जिन्दगीमें एक दूसरेसे टकराते और उलझते हैं, वहाँ इस सरकार नामके अपराधीको निकाल फेंकनेके बाद भी जीवनका एक सुनिश्चित नियामकतंत्र तो क़ायम होना ही चाहिए; झूठ और सच का, भले और बुरेका विवेक तो करना ही होगा। और मानव इतिहासमें एक-हजारवीं बार फिर हम इस सचाई पर पहुँचते हैं कि सामाजिक पुनर्निर्माणका काम आलोचना से कितता ज़्यादा मुश्किल है। जिस क्षणसे टाल्स्टाय निदानसे चिकित्साकी ओर मुड़ता है, और मौजूदा समाज-व्यवस्थाका इनकार करने और उसकी भर्त्सना करने के बजाय, अपने मनके आदर्श और उन्नत मानव-समाजका प्रस्ताव जब वह सामने रखता है, तो उसकी सारी धारणायें बिल्कुल अस्पष्ट हो पड़ती हैं और उसके विचार उलझनमें पड़ जाते हैं। क्योंकि जीवनके मुख़्तलिफ़ व्यापारों और पहेलुओं को संघटित करनेके लिए टाल्स्टाय सत्ता, क़ानून और अमलदारीको लेकर चलनेवाली एक स्थायी सुव्यवस्थित स्टेटके बजाय, 'प्रेम, भाई-चारा, श्रद्धा' और 'क्राइस्ट के भीतर होकर जीना' आदिकी सिफारिश करता है। यह बात एक ऐसे आदमीके मुँह से सुनकर हमें अचरज होता है जिसने मानव आत्माकी हर गहराईकी ऐसी खोज की है, जैसी किसी दूसरेने नहीं की टाल्स्टायके ख्यालसे, आज सम्पत्तिशाली वर्ग तथा संस्कृतिके बिगड़ैल बच्चों और कंगाल लोगोंके बीच जो एक विशाल खाई पड़ी हुई है, वह खाई तभी पूरी जा सकती है, जबकि सम्पत्तिशाली वर्ग स्वेच्छतया अपने

अधिकारोंका त्याग कर दें, और जीवनसे ऐसी बड़ी-बड़ी माँगें करना बन्द करदे। धनवान अपने धनका त्याग करे और बुद्धिजीवी अपने औद्धत्यका त्याग करें; कलाकार ऐसी कलाका सृजन करे जिसे जन-साधारण समझ सकें; हर आदमी अपने परिश्रमपर ही जिये और उस परिश्रमके लिये वह उतना ही प्राप्त करे जितना कि जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये काफ़ी होता है, यही टाल्स्टायके विचार-दर्शनका केन्द्रबिन्दु है: जैसा कि क्रान्तिकारी लोग कहते हैं, वैसा धनवानोंसे दबावपूर्वक उनकी सम्पत्ति छीनकर, सामाजिक समतलताका निर्माण हमें नीचेसे नहीं करना है; बल्कि सम्पत्तिशाली वर्गसे उनकी स्वयम्-प्रेरित छूट लेकर ही हमें ऊपरसे यह समतलता प्राप्त करनी है।

टाल्स्टायने यह खूब अच्छी तरह समझ लिया था कि आदिम-किसानकी अवस्था में मनुष्यको उतार लानेवाली यह जीवन-व्यवस्था हमारे बहुतसे सांस्कृतिक मूल्योंको नष्ट कर देगी। हमें आसानीसे इस सादगीकी राह पर ले आनेके लिये उसने कलापर एक पुस्तिका लिखी थी, जिसमें उसने शेक्सपीयर और बिथोवन जैसे हमारे महानतम कलाकारोंकी कृतियों तककी भर्त्सना की थी, इसलिये कि साधारण जनता उन्हें अच्छी तरह समझ नहीं सकती है। धनवान और ग़रीबके बीचकी जो भयानक खाई आजकी समूची दुनियामें जहर घोल रही है, उसका नाश करनेसे अधिक और कोई चीज इस समय टाल्स्टायकी दृष्टिमें महत्वपूर्ण नहीं थी। क्योंकि एक बार आवश्यकताओंकी समानता अथवा सामान्यताके द्वारा यदि मनुष्योंके बीच एकता कायम हो गई, तो फिर द्वेष और घृणा जैसी कुवृत्तियोंके आक्रमणका आधार ही नष्ट हो जायगा। अधिकारी सत्ताएँ क़ायम करके उन्हें बलात् चलाये जाना तो एक फिजूलसी बात होगी। पृथ्वीपर प्रभुका राज्य उसी दिन कायम होगा, जिस दिन ऊँचता और नीचताके सारे सामाजिक भेद एकबारगी ही खतम हो जायेंगे और लोग फिरसे एक बार एक-बन्धुभावी समाज क़ायम करना सीख लेंगे।

अजहद भेदभावोंसे भरे उस देशमें यह सिद्धान्त इतना आकर्षक साबित हुआ, और अपने युगमें टाल्स्टायका प्रभुत्व इतना अधिक बढ़ा हुआ था कि बहुतसे लोग

टाल्स्टायके इस सामाजिक सिद्धान्तको अमलमें लानेके लिये उतावले हो उठे। कुछ स्थानोंपर कुछ खास लोगोंने, अपरिग्रह और अहिंसाके आधार पर उपनिवेश बसा कर इन सिद्धान्तोंको आजमानेकी कोशिश भी की। पर इन प्रयत्नोंके बड़े ही निराशा-जनक परिणाम सामने आये; और टाल्स्टाय स्वयं अपने घर और कुटुम्ब तकमें, टाल्स्टायवादके बुनियादी उसूलोंको क़ायम करनेमें विफल हुए। अपने सिद्धान्तोंके साथ अपने व्यक्तिगत जीवनका सामंजस्य स्थापित करनेके लिये उसने बरसों परिश्रम किया; शिकारके अपने प्यारे शौकको उसने तिलांजलि देदी, इसलिये कि उसके हाथों प्राणियोंकी हत्या नहीं होनी चाहिये; जहाँ तक सम्भव हो सकता था वह रेल-मार्गसे यात्रा नहीं करता था; अपने लेखनकार्यसे आमदनी उसे होती थी उसे या तो वह अपने कुटुम्बियोंको देता था या फिर वह परमार्थमें चली जाती थी। उसने मांस खाना छोड़ दिया था, क्योंकि जीवित प्राणियोंके बलात्करणके बिना मांसाहार संभव नहीं है। वह स्वयम् खेतोंमें हल चलाता था, एक गाढ़ा देहाती कोट पहन कर ही वह बाहर निकल जाया करता था और अपने हाथोंसे ही अपने जूतोंके तले वह ठीक कर लिया करता था।

पर बाहरी वास्तविकताके दबाव पर उसके विचार विजय नहीं पा सके; और उसके जीवनकी सबसे बड़ी ट्रेजेडी तो यह थी कि उसके अपने कुटुम्ब और उसके निकटतम सम्बन्धियों और प्रियजनोंमें उसके विचारोंको सबसे कम प्रश्रय मिला था। उसकी पत्नी उससे बहुत अलग पड़ गई। उसके बच्चे यह नहीं समझ सके कि अपने पिताके सिद्धान्तोंके खातिर उन्हें क्यों ग्वालों और किसानोंके बच्चोंकी तरह पर्वरिश किया जा रहा है? उसकी लिखावटकी 'सम्पत्ति' पर उसके सेक्रेटरी और अनुवादक शराब पिये हुए कोचवानोंकी तरह लड़ने लगे। उसके आसपासके लोगोंमें एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, जिसने इस भव्य प्रकृति-पूजकके जीवनको एक सच्चे ईसाईके जीवनके रूपमें स्वीकार किया हो। और जैसा कि उसकी डायरीसे जाहिर है, टाल्स्टायने स्वयम् ने भी अन्तमें यह समझ लिया था कि एक-प्रभुत्वके साथ प्रचारित किये गये अपने आदर्शको प्राप्त करनेमें उसकी अपनी बौद्धिकता और अभिमान ही सबसे अधिक

घातक सिद्ध हुए। उसकी डायरीमें हम यह प्रश्न पढ़कर काँप उठते हैं: "लीयो टाल्स्टाय, क्या तुम अपने सिद्धान्तके अनुसार जी रहे हो ?" और फिर वह कड़ुवा उत्तर. "नही। मैं लज्जासे मरा जारहा हूँ। मैं अपराधी हूँ और घृणा करनेके लायक हूँ" और वह तिरासी वरसका बूढ़ा आदमी, अपनी मौतका आगमन अनुभव करके, रातोंरात अपने घरसे भाग खड़ा होता है और एक छोटेसे रेल्वे स्टेशनपर, अपने पवित्रतम प्रयोजनमें निराश और एकाकी वह मर जाता है।

जो कुछ भी हो, जिदपूर्वक यह कहना तो एक बड़ा ही सस्ता ख्याल होगा कि टालस्टायकी सामाजिक और धार्मिक विचार-परम्पराको अमली रूप देना उतना ही कठिन था जितना कि प्लेटोकी कल्पना की सरकारको, और जीन जेकस रूसोके स्वप्नकी समाज-व्यवस्थाको। साथ ही यह भी एक बाल्य-सुलभ आसानीसे हमें मालूम हो जाता है कि टालस्टायके कथा-साहित्यमें जो तेजस्विता और जो उद्बोधकता थी वह उसके सैद्धान्तिक लेखोंमें बहुत कम ही आ सकी है। जैसा कि प्रस्तुत चयनमें किया गया है, उसकी एक या दो लोकप्रिय कहानियोंकी तुलना करनेपर ही ही इस भेदका पता लग जायगा। इन कहानियोंमें अपने उन्हीं विचारोंको उसने अपनी सैद्धान्तिक लिखावटकी कट्टरताके साथ ही प्रतिपादित किया है। लोक-प्रिय कथाओंकी कुछ सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ तो बाइबिलकी जॉब और रूथकी कहानियोंके समकक्ष रखी जा सकती हैं। इन कहानियोंको टालस्टायने बड़े ही संयम, सतर्कता और कौशलसे लिखा है। पर इनमें उसकी दार्शनिकता बेहद भटकी हुई और जबरदस्त हो पड़ती है और एक-प्रभुत्वके दम्भके कारण वह अरोचक भी हो जाती है। कुछ ऐसा मालूम होने लगता है कि इन अठारहसौ अस्सी बरसोंमें शायद लियो टाल्स्टाय ही पहला व्यक्ति था जिसने धर्म-देशनाओंको सही-सही पढ़ा था, और उससे पहले मानव-समाजकी समस्याओंके बारेमें इतनी गहराई और बारीकीसे शायद ही किसीने विचार किया हो। अक्सर तुर्गनेवके शब्दोंको दोहराकर, टाल्स्टायसे यही विनती करनेको हमारा जी चाहने लगता है, कि वह, 'हमें क्या करना चाहिये, और 'प्रभुका राज्य हमारे भीतर है, तथा बाइबिलकी निरर्थक उपस्थापनाओंके उलझनभरे

रास्तोंसे लौटकर कला-सर्जनके क्षेत्रमें आ जाये; जहाँ कि वह बहुतोंकी भीड़में का एक निरा दर्शक मात्र नहीं था, बल्कि एक माना हुआ कला-स्वामी था, अपनी जाति और अपनी शताब्दिका एक उज्ज्वलतम चित्रकार था । इस सबके बावजूद भी टाल्स्टायके जीवन-दर्शनके फलस्वरूप जो शक्तिशाली और युगान्तरकारी परिवर्तन उपस्थित हुए उन्हें स्वीकार न करना भी एक बहुत बड़ा अन्याय होगा । और निश्चित ही यह कहना भी अत्युक्ति न होगी कि उसके समकालीनोंमें एक भी चिन्तक— कार्लमार्क्स और नित्शे भी, कोटिकोटि मानवताके भीतर ऐसा भावोन्मेष नहीं जगा सके, जैसा कि टाल्स्टायने जगाया; तो भी भिन्न-भिन्न वृत्तियोंके कारण इन विचारकों के प्रभाव बिल्कुल भिन्न-भिन्न रूपसे घटित हुए थे । जैसे स्वर्गकी नदियाँ अपने केन्द्रसे अनेक विरोधी दिशाओंमें बहती हैं, उसी प्रकार टाल्स्टायके विचारोंने बड़े ही विलक्षण रूपसे, बीसवीं शताब्दिके नितान्त परस्परविरोधी सारे बौद्धिक आन्दोल-नोंको उर्वर बनाया था। व्यवस्थित बोलशेविज़्मसे अधिक शायद हीकोई चीज़ टाल्स्टायकी प्रकृतिके विरुद्ध रही हो। बोल्शेविज़्म का आरम्भ शत्रुके नाशकी माँगसे ही हुआ था (जबकि टाल्स्टाय प्रेमके द्वारा सन्धि चाहता था)। जिस सरकारको टाल्स्टाय 'दलीकेथव' कहा करता था, बोलशेविज़्मने उसी सरकारको व्यक्तिके ऊपर,कल्पनातीत सत्ता प्रदानकी थी। बोलशेविज़्म शक्तिके केन्द्रीकरणका विश्वासी था, वह नास्तिक था, और जनताको उसके प्रमादसे जगानेके जो तरीके उसने अख़्तियार किये; वे टाल्स्टायके 'तुम्हें इस तरह जीना होगा' के ठीक विरुद्ध पड़ते थे । इस सबके बाव-जूद भी उन्नीसवीं शताब्दिके रूसी क्रांतिकारियोंमें किसीने भी लेनिन और ट्राट्स्की के पथको इतना सुगम नहीं बनाया, जितना कि इस क्रान्ति-विरोधी काउन्टने बनाया; जिसने कि सबसे पहले ज़ारकी सत्ताको चुनौती दी थी, और पवित्र धर्म-सभाकी निर्वासन आज्ञासे बाध्य किये जानेपर जिसने चर्च तक छोड़ना मंजूर किया था, जिसने हथौड़ेकी चोटोंसे तमाम तत्कालीन सत्ताओंको छिन्न-भिन्न कर दिया था, और एक नई और बेहतरीन दुनियाके निर्माणके लिये जिसने 'सामाजिक पुनर-संघटना'की एक अनिवार्य शर्तके रूपमें माँग उठाई थी । जब सेंसरने उसकी पुस्तकोंपर प्रतिबंध

लगा दिया तो हाथसे नक़ल करवा-करवा कर उसकी वे पुस्तकें हजारों लाखों आदमियोंके हाथोंमें पहुँचाईं गईं और यों सम्पत्तिको उखाड़ फेंकनेकी उसकी माँग हर-जनसाधारणके ज्ञानकी वस्तु बना दी गई; जबकि उस समयके भीषणसे भीषण समाज-सुधारक ऊपर-ऊपरके उदार मतवादी भी तत्कालिक सुधारोंसे ही संतोष कर लिया करते थे। किसी भी पुस्तक और किसी भी व्यक्तिने रूसको प्रगतिशील बनानेमें इतना बड़ा काम नहीं किया, जितना कि टालस्टायके चिन्तनकी अग्रगामिताने किया। अपने देशवासियोंको बड़ेसे बड़ा साहसका क़दम उठानेमें भी न हिचकनेकी जैसी हिम्मत टालस्टायने दी, वैसी और किसीने नहीं दी। उसके सारे भीतरी विरोधोंके बावजूद भी रेड-स्क्वेयर पर उसका स्मारक होना ही चाहिये। जिस प्रकार रूसो फ्रेंच क्रांतिका आदि-जनक था, ठीक उसी प्रकार टालस्टाय भी (शायद हर अदम्य व्यक्तिवादीकी तरह ही ठीक अपनी इच्छाके विरुद्ध) 'प्रोड्रोमॉस' (Prodromos) था। रूसी विश्व-क्रांतिका सच्चा आदि-जनक था।

लेकिन साथ ही, यह बड़ी विचित्र बात है, कि उसके सिद्धान्तने दूसरे लाखों व्यक्तियोंपर इससे ठीक उल्टा असर डाला। दुनियाके दूसरे छोरपर, हिन्दोस्तानमें गाँधीने, जो कि ईसाई नहीं है, टालस्टायके उसी मिशन का बीड़ा उठा लिया है। जब कि रूसियोंने मात्र टालस्टायकी प्रगतिशीलताको अपनाया, गाँधीने उसके अप्रतिकारके सिद्धान्तको अपनाया है। और अपनी जातिके चालीस करोड़ मनुष्योंके बीच वह पहला व्यक्ति था, जिसने सत्याग्रहके तंत्रका संगठन किया। अपने इस सत्याग्रही युद्धमें उसने भी उन्हीं अहिंसक शस्त्रोंको अपनाया, जिन्हें टालस्टायने जायज करार देकर जिनकी सिफारिश की थी; उद्योगवादका नाश, गृहउद्योगोंकी स्थापना और बाहरी आवश्यकताओं को अधिकसे अधिक कम करके आन्तरिक और राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त करना। रूसकी सक्रिय क्रांतिमें और हिन्दोस्तानकी सत्याग्रही क्रांतिमें, हजारों-लाखों व्यक्तियोंने इस प्रतिगामी क्रांतिकारी या विद्रोही प्रतिगामीके विचारोंको अपनाया है—लेकिन जिस तरहसे ये विचार अपनाये गये हैं, उस तरीकेको उनका स्रष्टा शायद अस्वीकार कर देता और शायद उसकी भर्त्सना

भी करता।

लेकिन अपने आपमें ही विचारोंकी कोई रुझान नहीं होती, जब तक समय की पकड़ उनपर नहीं बैठ जाती; हवाके वहन करनेवाले पालकी तरह ही उन विचारों को गतिमान नहीं किया जा सकता। विचार तो गति-शक्तिके यन्त्र मात्र हैं, जो इस गति और आवेगके लक्ष्यको जाने विना ही गतिको जन्म देते हैं। प्रस्तुत विचारोंमें से कितने खण्डनीय या अखण्डनीय हैं, यह जाननेसे तो कोई खास अन्तर नहीं पड़ता है। चूँकि टाल्स्टायके विचारोंने निःसंदेह एक विश्व-व्यापी पैमाने पर इतिहासका निर्माण किया है; इसलिये उसकी सैद्धान्तिक रचनाएँ अपने सारे पारस्परिक विरोधोंके बावजूद, हमेशाके लिये हमारे युगके सबसे महत्वपूर्ण बौद्धिक और सामाजिक निर्माण-तन्तुओंके बीच अपना स्थान बना चुकी हैं। आज भी वे रचनाएँ एक व्यक्ति पाठक को बहुत कुछ दे सकती हैं। शान्तिवाद और मनुष्य-मनुष्यके बीच एक शान्तिपूर्ण संधि उपस्थित करनेके लिये लड़नेवाला व्यक्ति, युद्धके विरुद्ध अपनी लड़ाई लड़नेके लिये इससे अधिक संपन्न और व्यवस्थित शस्त्रागर मुश्किलसेही और कहीं पा सकेगा। मनुष्यके हर विचार और प्रयत्नके एक मात्र ठोस लक्ष्यके रूपमें आज जो स्टेट को एक ईश्वरावतारके रूपमें देखने का पागलपन चल रहा है, उसके खिलाफ़ जिस व्यक्तिकी आत्मा विद्रोह करती है, और इस बुत-परस्तीके प्रति अपना सम्पूर्ण आत्म-बलिदान करने से जो इनकार करता है, उस विश्व-मानवताके पुजारीको टाल्स्टाय की इन रचनाओंसे एक अद्‌भुत बल प्राप्त होगा। हर शोधकको, हर समाज-शास्त्री को हमारे युगकी इस बुनियादी आलोचनाके भीतर एक पैग़म्बरी अग्र-दर्शिताका दर्शन मिलेगा। अपने शब्दकी शक्तिसे, पृथ्वीपर वर्तमान सारे अन्यायोंसे लोहा लेनेके लिये और निखिल की हित-चिन्ता करनेके लिये जिसने अपनी आत्माको तपाया, उस महाशक्तिशाली कविके आदर्शसे हर कलाकार को प्रेरणा लेनी चाहिये। जब एक चोटीका कलाकार हमारे सामने एक नैतिक आदर्शके रूपमें भी उपस्थित होता है,—और एक ऐसे व्यक्तिके रूपमें आता है जिसने अपनी कीर्तिसे शासन करनेके बजाय, अपनेको मानव-जातिका सेवक बना दिया, और एक सच्चे नीति-मार्गके लिये

युद्ध करते हुए जिसने अपने अक्षुण्ण विवेक को छोड़ पृथ्वीकी किसी भी अन्य शक्तिके प्रति अपनेको नहीं झुकाया, तो इससे बढ़ कर अन्यतम आनन्दकी वस्तु और क्या हो सकती है ?

—o—

स्टिफेन ज़्वीगने टॉलस्टॉयके विचारोंका चयन और संपादन निम्नलिखित पुस्तकोंसे किया है—

१ माय कन्फेस्सन, २ दी किंगडम ऑफ् गॉड इज़ विदिन यू, ३ वार एंड पीस, ४ निकोलास् विग्स्टिक्क् ५, थ्री पैरेबल्स्, ६ किंग अस्सार हैडॉन, ७ व्हाट मेन लिव्ह बाय्

*

लियो निकोलायेविट्च टॉलस्टॉय की

रचनाएँ (सन् १८२८–१९१०)

चाइल्टहूट (१८५२), बॉयहूट (१८५४), यूथ (१८५५-१८५७), थ्री डेथ्स् (१८५९), दी कोस्सैनक्स् (१८६३), वार एंड पीस (१८६४-१८६९), अन्ना कैरेनिना (१८७३-१८७७), माय कंफेस्सन् (१८७९–१८८२), व्हाट् मेन् लिव्ह बाय एंट अदर स्टोरीज (१८८१), दी पॉवर ऑफ डार्कनेस् (१८८५), क्रेउत्ज़र सोनाटा (१८९०), दी किंगटम ऑफ गॉट इज विदिन यू (१८९३), व्हाट् इज आर्ट (१८९८), रिजेरक्शन (१८९९) स्लेवरी ऑफ अवर टाइम्स् एंट अदर एसेट्ज् (१८९९)

टाल्स्टायका आत्मदर्शन *

मेरी ईसाई दीक्षा और मेरी शिक्षा कट्टरपंथी ईसाई धर्मके अन्तर्गत हुई थी; मेरे बचपन, लड़कपन और जवानीमें मुझे वही सिखाया गया था। लेकिन अठारह बरसकी उम्रमें, जब दूसरे साल मैंने युनिवर्सिटी छोड़ी, तो अब तक जो कुछ सीखा था, उसपरसे मेरा विश्वास जाता रहा।

जैसा कि अक्सर होता है, बचपनसे जो श्रद्धा मेरे भीतर घर कर गई थी, वह धीरे-धीरे जाती रही। अन्तर केवल इतना ही था कि, चूँकि पन्द्रह वर्षकी उम्रसे ही मैंने दर्शनशास्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया था, इसलिए जल्दी ही मेरे भीतर अपनी स्वयम्‌की मान्यताओंकी एक सतर्कता आ गई। सोलह वर्षकी उम्रसे ही मैंने प्रार्थना करना बंद कर दिया। अपनी एक दृढ़ मान्यताके साथ, मैंने गिरजाकी प्रार्थनाओंमें जाना और उपवास करना भी छोड़ दिया। अपने बचपनकी धर्म-श्रद्धा अब मेरे लिए स्वीकार्य नहीं रह गई थी। मैं किसी दूसरी ही उस चीजमें विश्वास करने लगा था, जिसेकि मैं स्वयं समझा नहीं सकता था कि वह चीज क्या है। मैं एक ऐसे ईश्वरमें विश्वास करने लगा था—या यों कहें कि ऐसे ईश्वरके अस्तित्व को जिसे मैं इनकार नहीं करता था—पर मेरा वह ईश्वर किस तरह का था, यह मैं बता नहीं सकता था। न तो मैंने

* 'माय कन्फेशन' से

युद्ध करते हुए जिसने अपने अक्षुण्ण विवेक को छोड़ पृथ्वीकी किसी भी अन्य शक्तिके अपनेको नहीं झुकाया, तो इससे बढ़ कर अन्यतम आनन्दकी वस्तु और क्या सकती है ?

—०—

स्टिफेन ज़्वीगने टॉल्स्टॉयके विचारोंका चयन और संपादन निम्नलि पुस्तकोंसे किया है—

१ माय कन्फेस्सन, २ दी किंगडम ऑफ् गॉड इज़ विदिन ३ वार एंड पीस, ४ निकोलास् विग्स्टिक्स् ५, थ्री पैरेब ६ किंग अस्सार हैडॉन, ७ व्हाट मेन लिव्ह बाय्

*

लियो निकोलायेविट्च टॉल्स्टॉय की

रचनाएँ (सन् १८२८–१९१०)

चाइल्डहूड (१८५२), बॉयहूड (१८५४), यूथ (१८५५-१८५७), थ्री (१८५९), दी कोस्सैक्स् (१८६३), वार एंड पीस (१८६४-१८६९), अन्ना कैरे (१८७३-१८७७), माय कंफेस्सन् (१८७९–१८८२), व्हाट् मेन् लिव्ह बाय एंड स्टोरीज (१८८१), दी पॉवर ऑफ डार्कनेस् (१८८५), क्रेउत्जर सोनाटा (१८८९ दी किंगडम ऑफ गॉड इज विदिन यू (१८९३), व्हाट् इज आर्ट (१८९८), रिजरेक्श (१८९९) फ्लेवरी ऑफ अवर टाइम्स् एंड अदर एस्सेज़् (१८९९)

टाल्स्टायका आत्मदर्शन *

मेरी ईसाई दीक्षा और मेरी शिक्षा कट्टरपंथी ईसाई धर्मके अन्तर्गत हुई थी; मेरे बचपन, लड़कपन और जवानीमें मुझे वही सिखाया गया था। लेकिन अठारह बरसकी उम्रमें, जब दूसरे साल मैंने युनिवर्सिटी छोड़ी, तो अब तक जो कुछ सीखा था, उसपरसे मेरा विश्वास जाता रहा।

जैसा कि अक्सर होता है, बचपनसे जो श्रद्धा मेरे भीतर घर कर गई थी, वह धीरे-धीरे जाती रही। अन्तर केवल इतना ही था कि, चूँकि पन्द्रह वर्षकी उम्रसे ही मैंने दर्शनशास्त्र पढ़ना आरम्भ कर दिया था, इसलिए जल्दी ही मेरे भीतर अपनी स्वयम्‌की मान्यताओंकी एक सतर्कता आ गई। सोलह वर्षकी उम्रसे ही मैंने प्रार्थना करना बंद कर दिया। अपनी एक दृढ़ मान्यताके साथ, मैंने गिरजाकी प्रार्थनाओंमें जाना और उपवास करना भी छोड़ दिया। अपने बचपनकी धर्म-श्रद्धा अब मेरे लिए स्वीकार्य नहीं रह गई थी। मैं किसी दूसरी ही उस चीजमें विश्वास करने लगा था, जिसेकि मैं स्वयं समझा नहीं सकता था कि वह चीज क्या है। मैं एक ऐसे ईश्वरमें विश्वास करने लगा था—या यों कहें कि ऐसे ईश्वरके अस्तित्व को जिसे मैं इनकार नहीं करता था—पर मेरा वह ईश्वर किस तरह का था, यह मैं बता नहीं सकता था। न तो मैंने

---

* 'माय कन्फेशन' से

मैंने बर्बाद किया, उन्हीं किसानोंको बड़ी बेरहमीसे मैंने सजाएँ दीं, फाहशा औरतोंके साथ मैंने ऊधम किये और लोगोंको धोखा दिया। झूठ, डकैती, हर प्रकारका व्यभिचार, शराबखोरी, हिंसा, हत्या...ऐसा कोई भी पाप या अपराध नहीं था, जो मैंने न किया हो। और इस सबके बावजूद अपने हमजोलियोंके बीच में अपेक्षाकृत चरित्रवान ही माना जाता था।

दस बरस तक ज़िन्दगीका यह दौर चलता रहा।

उन्हीं दिनों मैंने लाभ और गौरवके लोभसे प्रेरित होकर, अहंकारवश कुछ लिखना आरम्भ किया। लेखकके नाते भी मैं उसी राहपर चला, जिसे मैंने आदमी के नाते चलनेको चुना था। अपनी लिखाईसे पैसा और कीर्ति पानेके ख्यालसे, अपने भीतरकी अच्छी बातोंके दबा देनेको लिये मैं मजबूर था, और इस तरह अपने भीतर-की बुराईयोंको ही मैं व्यक्त कर पाता था। यह सिलसिला बराबर चलताही गया। लिखते समय कई बार मैं अपने दिमाग पर सिर्फ इसीलिए जुल्म किया करता था कि मेरे भीतर जो एक उत्कर्षका तक़ाज़ा था, और जो मेरे जीवनका यथार्थ सत्य था, उसे मैं किसी तरह एक तिरस्कार और हलके मनोरंजनके आवरणमें छुपा सकूँ। इस दिशामें भी मैं सफल होगया और चारों ओर से मुझपर प्रशंसाएँ बरसने लगीं।

छब्बीस वर्षकी उम्रमें, युद्धका अन्त होने पर, मैं पीटर्सबर्ग आया और वहाँ मैंने उस जमानेके लेखकोंका परिचय प्राप्त किया। चारों ओर से मेरा हार्दिक स्वागत हुआ और काफी-कुछ चापलूसी भी हुई।

इसके पहले कि मैं अपने चारों ओर निगाह उठा कर देखनेका अवसर पा सकूँ, मेरे सहयोगी लेखकों, पूर्वाग्रहों और जीवन-सम्बन्धी विचारोंने मुझ पर कब्जा कर लिया, और इस तरह अपने भीतर-जीवनोत्कर्षके लिये चलनेवाले अपने सारे पिछले संघर्षोंका मैंने पूरी तरह खातमा कर दिया। मेरे जीवनके मुक्त व्यभिचरणके प्रभाव-तले पनपनेवाले मेरे इन विचारोंने मुझे एक सिद्धांत दे दिया, जिसने मेरे उक्त नैश्चयकी स्वीकृति देदी।

मेरे इन लेखक-साथियोंका जीवनसम्बन्धी दृष्टिकोण यह था कि जीवन एक

विकासकर क्रम है, और इस विकासको उत्तरोत्तर आगे बढ़ानेमें सबसे महत्वपूर्ण भाग हम चिन्तकोंका है; चिन्तकोंके बीच भी सबसे अधिक प्रभावशाली हम लोग हैं—हम, कवि और कलाकार लोग। मनुष्यको शिक्षा देना ही हमारा प्रधान कर्म—व्यापार है।

"मैं क्या जानता हूँ, और क्या सिखा सकता हूँ?" स्वाभाविक रूपसे मनमें उठनेवाले इस सवालके जवाबको टालनेके लिये, हमने अपने सिद्धांतमें यह सूत्र जोड़ दिया था कि कलाकारको यह सब जानना आवश्यक नहीं है; कवि और कलाकार तो अपने अनजाने ही शिक्षा देता चलता है।

मैं स्वयम् एक अद्भुत् कलाकार और कवि माना जाता था, और इसीलिये स्वभावतया मैंने इस सिद्धान्तको अपना लिया था। मैं, एक कलाकार और कवि, कुछ वह लिखा और सिखाया करता था, जिसे मैं स्वयम् भी नहीं जानता था। यह सब करनेके लिये मुझे पैसे मिलते थे; मैं एक आलीशान टेवल रखा करता था और निहायत उमदा मकानमें रहा करता था; मेरे आस-पास औरतें थीं, सोसायटी थी, मैं कीर्तिका धनी था। तब स्वाभाविक है कि जो कुछ शिक्षा मैं देता था, वह अच्छी ही होती थी।

आज जब मैं उन दिनोंके बारेमें सोचता हूँ और अपनी उन दिनोंकी मनोदशाका, और अबके इन लोगोंकी मनोदशाका ख्याल करता हूँ, (आज भी जो मनोदशा आमतौर पर हजारों लोगोंमें पाई जाती है) तो मुझे यह सब बहुत दयनीय, भयानक और हास्यास्पद दिखाई पड़ता है, यह चीज मनमें कुछ इसी तरहका भाव जगाती है, जैसा कि किसी पागलखानेके पाससे गुजरते हुए हमारे दिलोंमें पैदा होता है।

तब हमें इस बातका पूरा यक़ीन था कि हमारे लिये यदि सबसे उपयुक्त कोई बात है तो वह यही कि हम अधिकसे अधिक तेज़ रफ़्तारसे बोलते, लिखते उस लिखेको छापते चलें; और यह भी कि मानव-जातिका उद्धार हमारी प्रवृत्ति पर निर्भर है। हममेंसे हजारों लोग इस तरह लिखते थे, छपवाते

नसीहत देते थे, और इस दौरमें परस्पर एक दूसरेका जमकर काट करते और गाली-गलौज करते थे। हमें इस बातका ज़रा भी भान नहीं था कि हम स्वयम् निरे अज्ञानी हैं; जीवनकी सबसे आसान समस्या—कि अच्छाई क्या है और बुराई क्या है—का भी हमारे पास कोई जवाब नहीं था। हम अपनी आपसी चर्चाओंमें ही बस मशगूल रहा करते थे, जब कि हमारी बात सुननेवाला कोई न होता था। जब-तब हम एक-दूसरेकी पारस्परिक प्रशंसा और हिमायत करनेमें ही खोये रहते थे; शर्त केवल इतनी ही होती थी कि बदलेमें सामनेवाला भी हमारी प्रशंसा कर रहा है, और फिर वे ही हम लोग मौक़ा आने पर एक-दूसरे पर क्रोधसे टूट भी पड़ते थे। संक्षेपमें यही कहा जा सकता है कि हम एक पागलखाने-केसे नज़ारे पैदा किया करते थे।

हजारों मजदूर दिन और रात अपनी शक्तिकी आखिरी बूँद तक चुका कर लाखों शब्दोंके टाइप जोड़ने और उन्हें छापनेके लिये काम कर रहे थे, ताकि डाक के जरिये वे समूचे रूपमें फैल सकें, और हम बराबर अपनी उपदेश-धारा बहाते ही जा रहे थे; और जब पर्याप्त उपदेश देनेमें हम अपने को अयोग्य पाते तो हम गुस्से भर कर यह शिकायत किया करते थे कि लोग हमारे कहे को सुनते ही नहीं हैं।

सचमुच वह एक अजीब वस्तु-स्थिति थी, लेकिन आज मैं उसे ठीक-ठीक समझ पाया हूँ। हमारा वास्तविक उद्देश्य पैसे कमाना और प्रशंसा करने की भूख थी जो हमारे सारे विचारों की प्रेरणा के मूल में काम कर रही थी। उसे प्राप्त करनेका एक ही उपाय हमारे पास था किताबें लिखना और अखबार चलाना; और वही हम किया भी करते थे। इस निरर्थक धंधेमें लगे रहकर भी हम लोग अपनेको अत्यन्त महत्व-पूर्ण आदमी समझते थे; और अपनी इस महत्ता और धंधेका औचित्य सिद्ध करनेके लिये हमने एक नया ही सिद्धान्त गढ़ लिया था, जो इस प्रकार है:

जो कुछ है, वही ठीक है; जो चीज़ जैसी है, वह विकासके कारण है; विकास सभ्यतामें होकर होता है; पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंका फैलाव ही सभ्यताका काम है; चूंकि पुस्तकों और अखबारोंके कारण ही हमें पैसा और प्रतिष्ठा मिलती है इस-लिये हम ही लोग सबसे उत्कृष्ट और उपयोगी आदमी हैं।

हमारी यह दलील आखिरी होती. अगर हम सब उसपर रज़ामंद हो सकते, पर हर राय जो किसी एक व्यक्तिके द्वारा प्रकट की जाती थी, उससे ठीक उलटी राय हममेंसे कोई दूसरा व्यक्ति तुरन्त प्रकट कर दिया करता था; इसीलिए किसी भी एक रायको अन्तिम रूपसे स्वीकार करनेमें हमें हिचक होती थी। लेकिन इस बातपर हमारा ध्यान नहीं था; हमें पैसा मिलता था, और हमारे दलके लोग हमारी प्रशंसा किया करते थे; इसीलिये हममेंसे प्रत्येक व्यक्ति यही समझता था कि हम जो कर रहे हैं, वह बिल्कुल ठीक ही कर रहे हैं।

आज मुझे अच्छी तरह समझमें आता है, कि पागलखानेके निवासियोंमें और हममें तब कोई फ़रक़ नहीं था; उन दिनों इस बातका एक अस्पष्ट संदेह-भर मेरे मनमें था, और अक्सर जैसा कि पागलोंका होता है, मैं अपने सिवा और सब लोगोंको पागल समझा करता था।

बादके अगले छह बरसोंमें, मेरी शादी होनेतक यह निरर्थकता चलती रही। इन्हीं दिनों मैंने विदेश-यात्रा की। यूरपमें जो जीवन मैंने बिताया और प्रसिद्ध विदेशी विद्वानोंका जो परिचय-सम्पर्क मैंने पाया, उससे मेरे सार्वदेशीय पूर्णतावाले विश्वासको बल मिला; क्योंकि सर्वांगिणी पूर्णता का यही आदर्श उन लोगोंके बीच भी मान्य था। इस विश्वासकी फिर वही शक्ल बनी, जो आज हमारे युगके संस्कारवान लोगोंमें आमतौर पर प्रचलित है। यह मान्यता एक शब्दमें प्रकट की गई—'प्रगति।' तब मुझे एक ख़्याल आया कि इस शब्दका कोई वास्तविक अर्थ होना चाहिए। अबतक मैं उसे नहीं समझ पाया था, और एक सवाल बराबर मुझे पीड़ित किया करता था—"मैं एक उच्चतर प्रकारका जीवन कैसे बिता सकता हूँ?" इसका मैं यह जवाब देता था कि हमें प्रगति करनी चाहिये, हवा और लहरोंके बहाव में पड़ी हुई नाव जब किसी आदमीको बहा ले जाये तो उसके सामने सबसे महत्वका सवाल यह उठता है कि हमें कहाँ जाना होगा?" और इसके उत्तरमें वह आदमी कहता है, कि "हम कहीं न कहीं तो जा ही रहे हैं"। मेरा उपरोक्त उत्तर "प्रगति कर रहे हैं" ठीक इसी प्रकारका था।

उन दिनों इस बातपर मेरा ध्यान नहीं था। सिर्फ़ कभी-कभी, मेरी बुद्धि नहीं, बल्कि मेरी भावनाएँ, हमारे युगके उस सर्वमान्य अन्धविश्वासके प्रति कि जो हमें अपने अज्ञानसे बेखबर रखता है, बग़ावत कर उठतीं थीं।

उन दिनों, एक बार जब मैं पेरिसमें ठहरा हुआ था, तो एक सार्वजनिक शिर-च्छेदके दृश्यने, मेरी कथित 'प्रगति' के अन्धविश्वासकी कमज़ोरीको मेरे सामने ला पटका। जब मैंने सरको धड़से अलग हो जाते देखा और बक्समें उनके अलग-अलग होकर गिरनेकी आवाज़ें सुनीं, तो बुद्धिसे नहीं, पर मेरे समस्त प्राणके भीतर होकर एक बात मेरी समझमें आ गई कि मनुष्यकी अबतककी—प्रस्थापित समूची प्रज्ञा और किसी भी प्रगतिके सिद्धान्त द्वारा शिरच्छेदके इस कृत्यको न्याय्य क़रार नहीं दिया जा सकता। और सृष्टिके आरम्भके दिनसे आजतक, दुनियाँके सभी मनुष्यों ने अपने किसी भी सिद्धान्तसे इस चीजको भले ही आवश्यक माना हो, पर मेरे लेखे यह अनावश्यक था, यह बुरी बात थी; और मुझे इस बातका निर्णय करना आव-श्यक जान पड़ा कि उचित और आवश्यक क्या हो सकता है? लोगोंके आचरण और कथन तथा हमारी बाहरी प्रगतिके आधारपर नहीं, पर अपने हृदयकी सत्यानुभूतिके आधारपर मैं इस बातका निर्णय किया चाहता था।

अपनी विदेशयात्रासे लौटकर मैं एक गाँवमें बस गया, और किसानोंके लिये स्कूलोंका संगठन करने लगा। मैंने मुन्सिफ़का ओहदा स्वीकार कर लिया, और स्कूलोंमें अपढ़ लोगोंको पढ़ाने लगा, तथा एक पत्र प्रकाशित कर उसके द्वारा शिक्षित समाजको शिक्षा देने लगा। बाहरसे मेरा काम ठीक तरहसे चल रहा था, [illegible]र मैंने पाया कि मेरे मनकी स्थिति स्वाभाविक नहीं है और जैसे कुछ प[illegible] है। मैं तभी शायद निराशाकी उस स्थितिमें पहुँच जाता, ज[illegible] मेरे जीवनमें आई; पर ठीक तभी वैवाहिक जीवनका एक नय[illegible] आ गया और उसने मुझे एक आश्वासनसे थाम लिया।

कोई एक पन्द्रह [illegible] मैं अपनी मुन्सिफ़ीमें, स्कूलोंके काम [illegible] व्यस्त रहा, और उनमें मैं इस क़दर उल[illegible] । कि मु[illegible]

परेशानी अनुभव होने लगी। मुन्सिफ़ीके काममें मुझे करारा संघर्ष करना पड़ता था; स्कूलोंकी प्रवृत्तिके बारेमें मेरे मनमें दुविधा थी; अखबारके कामसे मन ही मन मुझे एक विरक्ति और ग्लानिसी हो रही थी। मेरी इस सारी ग्लानि और संघर्षके मूलमें एक ही चीज काम कर रही थी मैं लोगोंको शिक्षा देना चाहता था, पर मैं उनसे यह बात बराबर छुपा रहा था कि मैं स्वयम् यह नहीं जानता था कि मुझे क्या सिखाना है और कैसे सिखाना है? इस मानसिक संतापने मुझे इस क़दर परेशान कर दिया कि मैं बीमार पड़ गया। आखिर मैं अपना सारा काम छोड़कर मुक्त हवामें साँस लेनेके ख्यालसे 'बश किर्स' के पठारी-प्रदेशमें चला गया, और वहाँ जाकर 'कुमिस' (एक प्रकारकी मदिरा) पीने लगा तथा एक प्रकारका सहज पाशविक जीवन बिताने लगा।

वहाँसे लौटने पर मेरा विवाह हो गया। सुखी वैवाहिक जीवनकी इस नई परिस्थितिने समग्र जीवनका अर्थ-सत्य खोजनेकी मेरी वृत्तिसे मुझे विमुख कर दिया। इस जमानेमें मेरा जीवन अपने कुटुम्ब, पत्नी और बच्चोंमें केन्द्रित हो गया; और इसके परिणामस्वरूप अपने जीवन-यापनके साधनोंको बढ़ानेकी चिन्तामें भी मैं व्यस्त रहने लगा। अपनी व्यक्तिगत पूर्णताकी ओर बढ़नेकी मेरी पहली चेष्टाका स्थान, सार्वजनिक प्रगतिकी भावनाने ले लिया था और अब मेरी वही भावना अपने कौटुम्बिक जीवनके लिये विशिष्ट सुख-साधन जुटानेके प्रयत्नमें परिणत हो गई।

इस प्रकार पन्द्रह वर्ष बीते। उन दिनों जो मेरे जीवनका सबसे बड़ा सत्य हो गया था, वही मैंने अपने लेखनके द्वारा भी सिखाया —और वह यही था कि हमारे और हमारे कुटुम्बका सबसे बड़ा सुख ही हमारे जीवनका उद्देश्य होना चाहिये।

इस प्रकार मेरा जीवन बीतने लगा, पर कोई पाँच वर्ष बाद एक विचित्र प्रकारकी मनस्थिति मुझपर हावी होने लगी; मेरे जीवनमें रह-रहकर उलझनके क्षण आने लगे। तब एकाएक मुझे कुछ ऐसा जान पड़ता जैसे जीवनकी गति रुक गई हो। मेरी समझमें नहीं आता था कि मुझे कैसे जीना चाहिये, मुझे क्या करना चाहिये। मैं निरुद्देश्य इधर-उधर भटकने लगा, और मेरी चेतना धीरे-धीरे मन्द पड़ने लगी। लेकिन थोड़े ही समयमें मैं इस अवस्थासे मुक्त हो गया, और फिर पहले ही की तरह

जीवन बिताने लगा। पर कुछ समयके बाद रह-रह कर बड़ी तेजीके साथ मुझे उक्त प्रकारकी उलझनके दौरे से पड़ने लगे और हर बार निश्चित रूपसे मैं उसी अवस्था में पहुँच जाता। जीवन के ये गति-रोध बार-बार मेरे सामने वही सवाल लाकर खड़े कर दिया करते थे : "क्यों ?" और "किसलिए ?"

पहले तो मुझे ऐसा जान पड़ा कि ये निरे निरुद्देश्य और अर्थहीन प्रश्न हैं। मुझे यह भी प्रतीत हुआ कि जो कुछ मैं पूछना चाहता था वह भी एक जानी-मानी चीज थी, और मैं जब भी उसका उत्तर पाना चाहूँ बिना किसी दिक्कतके बड़ी आसानीसे वह पाया जा सकता है : जब वे प्रश्न उठते हैं तब तुरन्त ही उन्हें लेकर मुझे परेशान नहीं होना चाहिये, मुझे उस समय सोचना बन्द कर देना चाहिये, और उत्तर अपने आप ही मिल जायगा। लेकिन वे प्रश्न एक दुर्निवार वेगसे बार-बार मेरे मनमें उठने लगे और एक दुरन्त आग्रहके साथ मुझसे उत्तर चाहने लगे; मानों एक के बाद एक, अनेक बिन्दुओंके रूपमें आ-आकर वे प्रश्न एक काले धब्बेके रूपमें एकत्रित हो गये हैं।

किसी भी प्राण-घातक आन्तरिक पीड़ाके मामलोंमें जैसा अक्सर होता है, वही मेरे साथ भी हुआ; प्रारम्भमें कुछ नगण्य लक्षण दिखाई पड़ते हैं, जिन्हें कि रोगी टाल दिया करता है। धीरे धीरे ये लक्षण बहुत तेज रफ़्तारसे प्रकट होने लगते हैं, और आखिरमें जाकर वे एक निरन्तर पीड़नमें परिणत हो जाते हैं। पीड़ा बढ़ती जाती है और रोगी कुछ और विचार कर सकनेके पहले ही यह पाने लगता है कि जिसे वह निरी नगण्य अस्वस्थता समझता था, वही उसके लिये संसारमें सबसे बड़ी चीज हो उठी है—और वह मौत है।

मेरे साथ भी ठीक यही हुआ। मुझे इस बातका भान हो गया कि यह महज कोई इत्तफ़ाक़ी अस्वस्थता नहीं है, बल्कि कुछ बहुत गम्भीर चीज है, और अगरचे ये सवाल लगातार इसी तरह उठते रहे, तो इनका जवाब मुझे पाना होगा। और मैंने उनका जवाब देनेकी कोशिश की। ये सवाल मुझे अत्यन्त भद्दे मूर्खतापूर्ण और बच-काने से लगते थे; पर ज्यों ही इन प्रश्नोंको पकड़ कर, उन्हें हल करनेका प्रयत्न मैं

करने लगा, तो मुझे निश्चय हो गया कि वे प्रश्न निरे बचकाने और मूर्खतापूर्ण नहीं हैं, बल्कि जीवनकी गहरीसे गहरी समस्याओंके साथ वे सम्बन्धित हैं; और दूसरी बात जो मैंने पाई वह यह थी—कि मैं उन्हें हल नहीं कर पा रहा था, लाख सिर खपानेके बाद भी नहीं।

इसके पहले कि मैं अपनी 'सॅमारा'की जमींदारीके कामको हाथमें लूँ अपने बच्चे की शिक्षा का प्रबन्ध करूँ या किताबें लिखूँ, मैं यह जान लेने को बाध्य था कि मुझे यह सब क्यों करना चाहिये। मैं जब तक इस 'क्यों' के लिये पर्याप्त कारण नहीं पा जाता, मैं कुछ नहीं कर सकता, मैं ज़िन्दा नहीं रह सकता। मेरी जमींदारी और गार्हस्थ के प्रबन्धका काम ही उन दिनों मेरा सबसे अधिक समय लेता था; उसके बारेमें विचार करते हुए एक दिन एकाएक यह सवाल मेरे मनमें आया :

"कितनी अच्छी बात है, 'सॅमारा' की मेरी सरकारके अन्तर्गत मेरे पास छह हजार गाँव हैं, तीन-सौ घोड़े हैं—फिर किस बातकी फिक्र है ?"

मेरा चित्त एकदम अस्तव्यस्त हो गया और मुझे यह नहीं सूझ पड़ता था कि मैं क्या सोचूँ। अगली बार जब मैं यह सोच रहा था कि मैं अपने बच्चोंको तालीम कैसे दूँ तो मैंने अपने-आपसे पूछा—"क्यों" ? फिर एक बार जब मैं यह सोच रहा था कि जनताका जीवन कैसे उन्नत हो सकता है, मैं एकाएक चिल्ला उठा—"लेकिन मेरा इस बातसे क्या सम्बन्ध है ?" अपनी पुस्तकोंसे मिलनेवाली कीर्ति के बारेमें जब मैं सोच रहा था, तो मैंने अपने-आपसे कहा:

"अच्छा मान लिया, कि मैं गॉगल, पुश्किन, शेक्सपीयर और मोलियर से भी अधिक प्रसिद्ध हो जाऊँगा—दुनियाके सारे लेखकोंसे अधिक प्रसिद्धि पा लूँगा—ठीक है, लेकिन इसके बाद ?"......

मैं कोई उत्तर न पा सका। ऐसे प्रश्न ठहरते नहीं हैं; वे तो तुरन्त उत्तर चाहते हैं; बिना उत्तर दिये ज़िन्दा रहना मुश्किल है, पर उत्तर मेरे पास कुछ नहीं था।

मैंने अनुभव किया कि जिस धरती पर मैं खड़ा था, वह फटकर टुकड़े-टुकड़े हो रही है, खड़े रहनेके लिये मेरे पास कोई जमीन नहीं रह गई है, मैं जिस चीजके लिये जी रहा हूँ उसका कोई मतलब नहीं है, और यह कि मेरे जिन्दा रहनेके लिये मेरे पास कोई पर्याप्त कारण नहीं है......

मेरे जीवनकी धारा रुक गई थी। मैं साँस लेता था, खाता था, पीता था, सोता था और यह सब करनेको मैं विवश था, पर मेरे भीतर कोई वास्तविक जीवन नहीं रह गया था, क्योंकि मेरी कोई भी इच्छा ऐसी नहीं थी, कि जिसकी पूर्ति मुझे उचित और सकारण जान पड़े। जब किसी चीजकी चाह मुझमें जागती, तो मैं पहले ही से जान लेता था, कि मैं इस इच्छाको तुष्ट करूँ या न करूँ? उससे कुछभी होना-जाना नहीं है। यदि कोई परी भी सामने आकर मेरी सारी मनचाही वस्तुएँ देनेको तैयार होजाती,तो मैं नहीं जानता कि मैं उसे क्या उत्तर देता? अपने उत्तेजनाके क्षणोंमें (मैं उन्हें इच्छाएँ नहीं कहूँगा) मेरी पहलेकी इच्छाओंकी आदतन कोई माँग-सी जब हो उठती थी, तो अपने शान्तक्षणोंमें मैं समझ लिया करता था कि यह केवल एक भ्रान्ति थी, और सचमुच किसी चीजके लिये कोई इच्छा मुझमें नहीं थी। सत्यको जाननेकी इच्छाभी मैं नहीं कर पाता था,क्योंकि इस बातका अनुमान मुझे था कि सत्य किस बातमें हो सकता है।

सत्य मेरे लिये यह रह गया था कि जीवन अर्थहीन है। जीवनका प्रत्येक दिन, प्रत्येक कदम मानों मुझे चट्टानके खतरनाक कंगूरेकी ओर ले जा रहा था; और मैंने साफ़ देखा कि मेरे सामने सत्यानाशके सिवाय और कुछ नहीं है। अब रुकना असम्भव था; लौटना भी असम्भव था। और यह देखनेसे आँखें बंद करना भी असम्भव होगया था कि मेरे सामने यंत्रणा, मौत और सर्वनाशके सिवाय अब और कुछ नहीं रह गया है।

इस प्रकार मुझ जैसा एक स्वस्थ, सुखी आदमी यह अनुभव करने लगा कि मैं अब और जिन्दा नहीं रह सकता—कोई अनिवार्य ताकत मुझे जिन्दगीसे बचकर भाग जानेके लिये खींच रही है। इसका मतलब यह नहीं है कि मैं अपनेको मार डालना

चाहता था।

जो शक्ति मुझे जीवनसे दूर खींच रही थी, वह किसी भी इच्छासे अधिक शक्तिशाली, सार्वभौम और पूर्णतर थी। जीवनमें पहले मैं जिस प्रबलता से आसक्त था, वैसी ही प्रबल यह शक्ति भी थी। अंतर केवल इतना ही था कि इस शक्तिकी दिशा, पिछली आसक्तिकी दिशासे ठीक उलटी थी। अपनी पूर्ण ताक़तके साथ मैं जीवनसे भाग जानेके लिये संघर्ष करने लगा। आत्म-घातका विचार मेरे मनमें उतने ही स्वाभाविक रूपसे आने लगा, जैसाकि पहले जीवन के उत्कर्षका विचार आया करता था। यह विचार मेरे लिये इतना आकर्षक था कि उसपर अमल करनेकी मनस्थितिको टालनेके लिये मैं अपने-आपको अनेक प्रकारसे धोखा दिया करता था। मैं उजलतमें कोई काम नहीं करना चाहता था, क्योंकि अपनी सारी शक्ति लगाकर मैं अपनी विचारोंकी उलझन को दूर करना चाहता था। यदि मैं उस उलझनको सुलझा न सका तो, कब मैं अपनेको मार डालूँगा, सो कुछ निश्चय नहीं था। जीवनमें सब प्रकार से भाग्यवान होनेके बावजूद, मैं अपने-आपको एक डोरी के टुकड़े तकसे छुपाये फिरता था; यह इसलिये कि शामको जिस कमरेमें मैं अकेला जाकर कपड़े बदलता हूँ, वहाँ उस डोरीके टुकड़ेको दरवाजेकी चौखटमें बाँधकर उसके फंदेसे फाँसी खानेका लालच कहीं मुझे न हो आये। अपनी बंदूक लेकर शिकार पर जाना मैंने इसी डरसे छोड़ दिया था कि उस बंदूक से अपनी जान ले लेना मेरे लिये बहुत आसान बात थी। मैं स्वयम्‌ही नहीं जानता था कि मैं क्या चाहता था; मैं जीवनसे भयभीत था; मैं उससे भाग खड़े होने के लिये जूझ रहा था; और फिर भी मुझे उससे कुछ पाने की आशा थी।

यह मनस्थिति तब आई, जब मैं जीवनमें चारों ओरसे अतिरिक्त रूपसे सुखी था, और जब मैं उम्रके पचासवें वर्षमें भी नहीं पहुँचा था। मेरे पास एक भली, स्नेहमयी, प्यारीसी पत्नी थी, सलौने बच्चे थे और एक बड़ीसी रियासत थी, जो बिना मेरे कोई खास कष्ट उठाये ही, अपनेआप समृद्ध और उन्नत होती जारही थी। मेरे मित्र और परिचित लोग उन दिनों अपूर्व रूपसे मेरा आदर करते थे; अजनबी लोगों के बीच

भी मैं प्रशंसित था, और बिना किसी विशेष आत्म-प्रवंचनाके इतना बड़ा नाम पैदा कर लेने का श्रेय भी मुझे प्राप्त था। इसके अलावा न तो मैं पागल ही था और न किसी मानसिक अस्वास्थ्यसे पीड़ित था; बल्कि इससे ठीक उल्टे, मैं एक ऐसे मानसिक और शारीरिक बलका धनी था, जो मेरे वर्ग और मेरे साधना-क्षेत्र के लोगोंमें मुश्किलसे ही पाया जाता है। मैं एक किसानके मुकाबलेमें बराबर घास काट सकता था, और बिना किसी दुष्परिणामके लगातार आठ से दस घण्टे तक दिमागी श्रम कर सकता था। यह थी वह वस्तुस्थिति जिसमें मैं जिन्दा नहीं रह सकता था, और चूँकि मुझे मौत का भय हो गया था, इसलिए मुझे ऐसे उपाय सोचनेको बाध्य होना पड़ा कि जिनके द्वारा मैं अपनेको अपने जीवनका खात्मा करनेसे बचा सकूँ।

उन दिनोंकी मेरी मनोदशा को संक्षेपमें यों बयान किया जा सकता है: मेरी जिन्दगी मानो मुझसे किसीके द्वारा किया जाने वाला एक बड़ा ही मूर्खतापूर्ण और क्रूर मजाक था, चूँकि मैं उस 'किसी' को नहीं पहचानता था जिसने मुझे पैदा किया होगा, मेरे लिये सबसे स्वाभाविक निष्कर्ष, जिसपर मैं पहुँच सकता था, वह यही था कि मुझे जो दुनियामें लाया है, उसने मेरे साथ बड़ा ही मूर्खतापूर्ण और क्रूर मजाक किया है।

खींच रही थी।

"लेकिन क्या यह भी सम्भव है कि मैं किसी चीजको नज़रन्दाज़ कर गया हूँ, या फिर किसी चीजको शायद मैं समझ ही न पाया हूँ ?" मैंने अपने-आपसे पूछा, "और क्या यह भी सम्भव नहीं है कि निराशाकी यह स्थिति मनुष्योंमें आमतौर पर पाई जाती हो ?"

और मानवीय ज्ञानकी हर दिशामें मैंने, अपनेको निरन्तर पीड़ित करनेवाले उन प्रश्नोंका उत्तर खोजा। निरे औत्सुक्यके वश या निरे प्रमादके वश नहीं, बल्कि अपने भीतर एक ज्वलन्त वेदना लेकर, आग्रहपूर्वक दिन और रात मैं उन प्रश्नोंका उत्तर पानेके लिये मथ रहा था। मैं ठीक वैसेही उसे पानेके लिये बेचैन था, जैसे कि एक नष्ट होता हुआ आदमी सुरक्षाके लिये छटपटाता है, पर मुझे कोई उत्तर नहीं मिला।

ज्ञानकी सारी शाखा-प्रशाखाओंमें मैंने उस उत्तरको खोजा, और मैं केवल विफल ही नहीं हुआ, बल्कि मुझे इस बातका भी निश्चय हो गया कि मेरी तरह और भी जिन लोगोंने ज्ञानमें होकर इस बातका उत्तर पाना चाहा है, वे विफल ही हुए हैं। यही नहीं कि मैं कुछ नहीं पा सका था, बल्कि मैं इस चरम निराशाके निर्णय-पर भी पहुँच गया था कि मनुष्य यदि कोई सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर सकता है तो वह केवल इतना ही कि जीवन एक निःसार वस्तु है।

मैंने चारों ओर खोज लिया। मुझे यह भी सौभाग्य प्राप्त था कि मेरा अधिक-तर जीवन स्वाध्यायमेंही बीता था, विद्वानोंकी दुनियासे मेरा गहरा सम्बन्ध था, ज्ञान की प्रत्येक दिशाके प्रकाण्ड पण्डितोंमें मेरी पहुँच थी, पुस्तकों और व्यक्तिगत सम्पर्क के द्वारा ज्ञानके वे सारे खज़ाने उन्होंने मेरे लिए खोल दिये थे, जो उनके पास थे। "जीवन क्या है ?" इस प्रश्नका जो उत्तर बड़ी से बड़ी विद्वता दे सकती है, वह मैं जानता था।

मानवीय ज्ञानके घने जंगलोंमें मैं गुमराह हो गया था। गणितशास्त्रीय और प्रयोगात्मक विज्ञानोंने जो स्पष्ट क्षितिज मेरी आँखोंके आगे प्रकट किये, वहाँ मनुष्य अपना घर नहीं बना सकता था और उस प्रकाश में चुंधियाकर मैं और भी भटक

गया। तत्वज्ञानके अन्धकारमें मैं ज्यों-ज्यों आगे बढ़ता था, तो हर अगले क़दमपर मैं एक गंभीरतर विषादकी गहराईमें उतराता जाता था। निदान मैंने पाया कि समस्या कोई नहीं है, और न होही सकती है।

* * * *

ज्ञानकी रोशनीकी ओर ज्योंही मैं दौड़ने लगा तो मैंने पाया कि मैं अपने वास्तविक प्रश्नसे दूर भटक गया हूँ,मेरे सामने खुलनेवाले क्षितिज चाहे जितने ही लोभनीय रहे हों, इस प्रकारके ज्ञानकी अथाह गहनतामें डुबकी लगाना चाहे जितना ही मोहक रहा हो; मुझे स्पष्ट प्रतीत हुआ कि इस प्रकारके ज्ञान-विज्ञान जितने ही अधिक स्पष्टतर होकर मेरे सामने आ रहे थे, वे मेरे लिये उतने ही अधिक अनावश्यक हो पड़ रहे थे; और उतने ही अंशोंमें वे मेरे प्रश्नका उत्तर देनेमें विफल हो रहे थे

इस प्रकार ज्ञानके क्षेत्रोंमें भटक कर मैंने पाया कि मेरी निराशा कम होनेके बजाय बढ़ी ही अधिक है। ज्ञानकी एक शाखा तो मेरे प्रश्नका उत्तर बिल्कुल देती ही नहीं थी। दूसरी शाखासे एक सीधा उत्तर मिलता था, जो मेरी निराशाका समर्थन करता था। उससे तो यहीं प्रकट होता था कि मेरी जो मनोदशा हो गई है वह कोई मेरे राहसे भटक जानेका परिणाम नहीं है और न वह किसी मानसिक दुर्व्यवस्थाका परिणाम है; बल्कि उल्टे इस ज्ञानने मुझे यह यकीन करा दिया कि मेरा सोचना सही है और यह भी कि मैं जिन नतीजों पर पहुँचा हूँ, वे मानवजातिके सर्वाधिक व शक्तिशाली विचारकोंके वैचारिक परिणामोंसे मेल खाते हैं।

मैं धोखेमें नहीं रह सका। जान लिया कि यह सब कुछ निरा अहंकार है। किसी आगामी दुर्भाग्यकी यह सूचना-भर है। इस जीवनसे मौत भली, जीवनके इस भारसे मुक्त होना ही पड़ेगा।

मेरी स्थिति बहुत भयानक हो गई थी। मैंने पाया कि तर्कके द्वारा मनुष्यको जो ज्ञान मिला है, उसमें जीवनके इनकारके सिवाय और कुछ नहीं है; और श्रद्धाजनित ज्ञानमें तर्कका अस्वीकार है। तर्कपर आधारित ज्ञानसे यह सिद्ध हो चुका था कि जीवन अपने-आपमें एक बुराई है और मनुष्य उसे इसी रूपमें जानता भी है;

मनुष्य चाहे तो जीवनकी धाराको रोक सकते हैं; लेकिन फिर भी वे जीते हैं और जीते ही जाते हैं। और मैं भी तो इसी तरह जी रहा हूँ, जबकि एक अरसेसे मैं यह जान गया हूँ कि जीवन निरर्थक है और बुरा है। यदि मैं श्रद्धाका सहारा लेता हूँ तो परिणाम यह आता है कि जीवनका अर्थ समझनेके लिये मुझे तर्कबुद्धिका त्याग कर देना पड़ता है—उस तर्क-बुद्धिका—जिसने मेरे भीतर जीवनका अर्थ जाननेकी यह जिज्ञासा जगाई है।...

इस नतीजे पर पहुँचनेके बाद मैंने समझ लिया कि तर्कपर आधारित ज्ञानमें अपने प्रश्नका उत्तर खोजना निरर्थक होगा;इस प्रकारके ज्ञानके द्वारा जो उत्तर मिलेगा, वह हमें यही सुझायेगा कि असलमें सही उत्तर पानेके लिये प्रश्नको ही दूसरे रूपमें प्रस्तुत करना होगा—यानी हमारे प्रश्न के भीतर असीम और ससीमके सम्बन्धका समावेश होना चाहिये। मैंने यह भी समझ लिया कि श्रद्धासे मिलनेवाले उत्तर चाहे जितने ही तर्क-हीन और बर्बर क्यों न हों,उसमें हमें एक सुभीता है और वह यही कि प्रत्येक प्रश्नमें असीम और ससीमके सम्बन्धका समावेश सहजही हो जाता है; और इस समावेशके बिना कोई उत्तर दिया भी नहीं जा सकता है।

जो भी हो, मैं प्रश्न उपस्थित करता हूँ, मुझे किस प्रकार जीना होगा? उत्तर मिलता है, " प्रभुकी आज्ञाके अनुसार "।

क्या मेरे जीवनमें कोई यथार्थ और सुनिश्चित सार-तत्व है, और यदि है, तो वह क्या है?

अनन्त अभिशाप, या अनन्त वरदान।

मौत जिसका नाश नहीं कर सकती वह कौनसा सत्य मेरे भीतर है?

अनन्त परमात्मा और स्वर्गके साथ एकाकार होना।

इस प्रकार मुझे यह माननेको बाध्य होना पड़ा कि तर्कजन्य ज्ञानके अलावा जिसे मैं कभी एकमात्र सच्चा ज्ञान मानता था, प्रत्येक जीवित मनुष्यके भीतर एक दूसरे प्रकारका ज्ञान भी है; वह है तर्कातीत ज्ञान—श्रद्धा—जो जीनेकी एक सम्भावना उत्पन्न करता है...

अपनी श्रद्धाको स्वीकार कर लेने के लिये अब मैं तैयार हो गया था। इसके लिये तर्कको सीधे इनकार करना जरूरी नहीं था, क्योंकि वैसा करना एक प्रकार का मिथ्या कथन ही होगा। तब मैंने बौद्ध और इसलाम धर्मोंके ग्रन्थ पढ़े, और साथ ही ईसाई धर्मका विशेष रूपसे अध्ययन किया। ईसाई-धर्म-ग्रन्थोंके साथ ही साथ अपने आस-पासके उसके उपदेष्टाओंकी जीवनियों का भी प्रत्यक्ष अध्ययन किया।

स्वभावतया सबसे पहले मैंने अपने ही निकट सम्पर्कके श्रद्धालु जनों, विद्वानों, कट्टर धार्मिकों, बूढ़े साधुओं, तथा एकमात्र मुक्तिदाता प्रभुमें विश्वास रखनेवाले, और तथाकथित सुधरे हुए नये ईसाइयोंकी ओर ध्यान दिया। जब-तब मैं इन श्रद्धालु-जनों को पकड़कर उनसे पूछा करता कि वे किस चीजमें विश्वास करते हैं और जीवन की सार्थकता वे किस बातमें देखते हैं।

किसी भी दलीलके द्वारा मैं इन लोगोंकी श्रद्धाकी सचाईमें यकीन नहीं कर सकता था। गरीबी, रोग और मौतका भय मुझमें बहुत प्रबल था। इस भय का नाश कर सकनेवाले जीवन-दर्शनका प्रत्यक्ष आचरण ही मुझे उन लोगोंकी श्रद्धाकी सचाईपर विश्वास करा सकता था। पर अपने वर्गके श्रद्धालु लोगोंमें मैं इस प्रकारका प्रत्यक्ष आचरण नहीं पा रहा था। इस प्रकारका आचरण मेरे वर्गकी खुली बगावत करनेवाले लोगोंमें मैं अवश्य देख पाता था, पर हमारे वर्गके तथाकथित धार्मिक-जनों में मुझे वह चीज नहीं मिली।

तब मुझे अच्छी तरह समझमें आगया कि इन लोगोंकी श्रद्धा वह श्रद्धा नहीं थी, जिसकी मुझे तलाश थी; सच पूछिये तो वह तो श्रद्धा थी ही नहीं, बल्कि वह तो मात्र एक जीवनका भोगवादी आश्वासन-भर था। मुझे लगा कि अगर्चे यह श्रद्धा हमें कोई वास्तविक आश्वासन नहीं देती है, फिर भी मौतके बिस्तरेपर पड़े सोलोमन के पश्चात्ताप-विगलित मनको एक तसल्ली तो अवश्य ही दे सकती है। पर यह सच है, कि मानवजातिके उस बड़े हिस्से को इससे कोई लाभ नहीं हो सकता, जो दूसरोंके श्रमपर ऐश करनेके लिये इस धरती पर नहीं जन्मे हैं? बल्कि जिन्हें स्वयम् अपने जीवनका निर्माण करना होता है। मानवजातिको

जीवित रहनेके लिये तथा अपनी जीवन-परम्पराको चलाते हुए जीवनकी सचाईके बारेमें ससंज्ञ रहनेके लिये, इन अरबों-खरबों मनुष्योंको एक सच्ची श्रद्धाकी आवश्यकता है। सोलोमनने, शापेनहारने या मैंने अपनेको मार नहीं डाला है, मात्र इससे श्रद्धाके अस्तित्वपर मेरा विश्वास नहीं क़ायम हो सकता। मुझे इस श्रद्धा पर तभी यक़ीन हो सकता है, जब मैं देख लूँ कि ये अरबों जीवित मनुष्य अपनी सहज जीवन-चेतनामें सोलोमनको और हमें साथ ले जाते हुए जी रहे हैं।

ग़रीब, निरीह, अज्ञानी, यात्रालु, साधु और किसानोंमें पाये जानेवाले श्रद्धालुओंके निकट मैं खिंचने लगा। साधारण जन-समाजके इन मनुष्योंके सिद्धान्त, हमारे वर्गके प्रवंचक श्रद्धालुओंके सिद्धांतोंकी तरह क्रिश्चियन-सिद्धान्त ही थे। इन लोगोंकी मान्यताओंमें भी सच्चे क्रिश्चियन सिद्धान्तोंके साथ अन्धविश्वास मिला हुआ था, जैसा कि हमारे वर्गके छद्म-श्रद्धालुओंमें था। अन्तर केवल इतना ही था कि हमारे वर्गके श्रद्धालुओंका अन्ध-विश्वास उनके लिये बिल्कुल निरुपयोगी था; उनके जीवनोंपर उसका कोई प्रभाव नहीं था—वह तो मात्र उनके लिए एक भोगवादी भटकन भर थी। जब कि मजूर वर्गकी अन्धश्रद्धा उनके जीवनोंके साथ कुछ इस क़दर गुँथी हुई थी कि उसके बिना उनके जीवनोंकी कल्पना करना ही असम्भव था—वह तो उनके जीवनकी एक आवश्यक शर्त थी। हमारे वर्गका समूचा जीवन हमारी श्रद्धा-आस्थासे ठीक उल्टा पड़ता था; और सामान्य लोक-जनताका समूचा जीवन उस जीवन-दर्शनका स्पष्ट प्रमाण था, जो उन्हें अपनी श्रद्धासे प्राप्त हुआ था।

इस तरह मैंने जनताके जीवन और सिद्धान्तोंका अध्ययन करना शुरू कर दिया। ज्यों-ज्यों मैं उस ओर आगे बढ़ रहा था, मुझे इस बातका अधिकाधिक निश्चय होता जा रहा था कि सच्ची श्रद्धा तो जनता ही के भीतर है; उनकी श्रद्धा उनके लिये एक आवश्यक वस्तु है, और वही उन्हें जीवनकी सार्थकता और सम्भावना भी दे सकती है। हमारे वर्गकी स्थिति इससे ठीक उलटी थी: वहाँ श्रद्धाके बिना भी जीवन सम्भव था और हज़ारमें एक व्यक्ति भी अपनेको श्रद्धालुके रूपमें प्रकट नहीं करता था; जबकि सामान्य जनतामें हज़ारमें एकाध ही व्यक्ति मुश्किलसे अश्रद्धालु

जाता था। हमारे वर्गके लोग अपने भाग्यके अभावों और पीड़नाओंसे क्षुब्ध होते थे और उनके प्रतिकारकी चेष्टा करते थे, जब कि ये सामान्य जन बिना किसी हिचकके और प्रतिकारके सारे रोगों और दुःखोंको झेल लेते थे, इस शान्त और दृढ़ विश्वासके साथ कि यह सब कुछ होना ही चाहिये और यह अन्यथा हो ही नहीं सकता; और यह भी कि जो होता है वह भलेके लिए ही होता है; 'हम जितने ही कम ज्ञानी हैं, उतना ही जीवनका अर्थ हम कम समझ सकते हैं, और इसीसे अपनी यंत्रणाओं और मौतमें हम किसीके क्रूर मजाकका अनुभव करते हैं,—इस सर्वसामान्य सिद्धान्तके ठीक विपरीत ये सामान्य अज्ञानी-जन बड़े ही धीर विश्वासके साथ और कभी-कभी तो बड़े ही आनन्दपूर्वक जीते हुए सारी यंत्रणाओंको सहन करते हैं और वैसे ही मौतको भी स्वीकार कर लेते हैं। हमारे वर्गोंमें भय और निराशासे मुक्त सहज मृत्युके उदाहरण बहुत ही दुर्लभ होते हैं। इसके विपरीत सामान्य जनतामें बेताब, प्रतिकारपूर्ण और गमगीन मौत मुश्किल से ही कोई मिल सकती है।

मानव जातिका बहुसंख्यक भाग यही जानता है, जो हमारे और सोलोमनके जीवनको जीने-लायक बनानेवाली जीवन-सामग्रीसे वंचित रहकर भी, उच्चतर सुख अनुभव करते हुए जी ले जाती है। मैंने और भी नजर फैलाकर अपने चारों ओर देखा। भूतकालीन और समकालीन जनताके जीवनका मैंने अध्ययन किया। और मैंने पाया कि दस-पाँच नहीं, सैकड़ों, हजारों, लाखों-करोड़ोंने जीवनका अर्थ यही समझा है कि वे जिन्दा भी रह सकते हैं और मर भी सकते हैं। भिन्न-भिन्न मानसिक शक्ति, शिक्षा, स्थिति और तौर-तरीकोंवाले ये सभी इन्सान जिन्दगी और मौतसे खूब परिचित थे, शान्त भावसे मजूरी करते थे, अपने अभावों और पीड़नोंको धैर्यपूर्वक सहन करते थे, जिन्दा रहते थे और मर जाते थे, और इस सबमें व्यर्थताके बजाय, एक अच्छाई ही देखते थे।

इन लोगोंके साथ जुड़-गुँथकर मैं आगे बढ़ा। ज्यों-ज्यों उनके जीवनोंके बारेमें मेरी जानकारी बढ़ने लगी, मैं उन्हें ज्यादा-ज्यादा प्यार करने लगा और जीना मुझे

आसान मालूम होने लगा। दो बरसतक मेरी जिन्दगी इसी तरह चलती रही। उसके बाद एक परिवर्तन आया, जिसकी तैयारी मेरे भीतर बहुत दिनोंसे चल रही थी। और जिसके लक्षणोंका धुँधलासा आभास मुझे बहुत दिनोंसे हो रहा था : अपने धनिक और विद्वान वर्गके प्रति मुझे ग्लानि ही नहीं हुई, बल्कि मेरी नजरोंमें वह निरर्थक भी हो गया। हमारे सारे आचरण-व्यवहार, हमारी तर्क-दलीलें, हमारे विज्ञान और कला, सभीके प्रति मेरा दृष्टिकोणही बदल गया। मुझे लगा कि वह सब निरा बच्चोंका खेल है, और यह भी कि उसमें कोई सार्थकता खोजना व्यर्थ है। सारी मानव-जातिके श्रमिक वर्गका जीवन—उन लोगोंका जीवन जो जीवनका सृजन करते हैं, मुझे अपने सच्चे और सार्थक रूपमें दिखाई पड़ा। मुझे प्रतीत हुआ कि यही सही यथार्थ जीवन था; इस जीवनका सत्यही जीवन का यथार्थ सत्य हैं, और मैंने उसे स्वीकार कर लिया।

मुझे याद आया कि कभी इन्हीं सिद्धान्तोंसे मुझे बड़ी विरक्ति होती थी। यही सिद्धांत मुझे तब कितने निरर्थक लगते थे, जब इनका उपदेश करनेवाले लोग ही जीवनमें ठीक इनके विरुद्ध आचरण करते थे। और इन्हीं सिद्धान्तोंने मुझे फिर आकर्षित किया, जब मैंने लोगोंको उनके अनुसार जीवन बिताते देखा। मेरी समझमें आगया कि क्यों मैंने तब उन्हें अस्वीकार कर दिया था और क्यों मैं उन्हें निरर्थक मानता था, और क्यों अब मैंने उन्हें स्वीकार कर लिया है और उन्हें सार्थक मानने लगा हूँ। मुझे समझमें आगया कि मुझसे गलती हो गई थी, और कैसे वह गलती हुई। गलत विचारके कारण यह गलती उतनी मुझसे नहीं हुई थी जितनी गलत जीवन जीनेके कारण मैंने समझ लिया कि सत्य मुझसे पोशीदा था। इसमें मेरे विचार-तर्कका दोष उतना नहीं था जितना कि शारीरिक सुख-भोगोंके लिये जिये जानेवाले मेरे अतिरिक्त भोगवादी जीवनका। मुझे स्पष्ट हो गया कि मेरा प्रश्न—"मेरा जीवन क्या है ?" और उसका उत्तर "एक बुराई" मेरी वस्तुस्थितिके अनुरूपही थे। गलती इस बातमें हुई थी कि जो उत्तर केवल मुझ पर ही लागू पड़ रहा था, उसे मैंने सर्वसामान्य जीवन पर लागू कर दिया था। मैंने पूछा था कि मेरा अपना जीवन

क्या है ? और उसका उत्तर था–''एक बुराई और निरर्थकता'' बात बिलकुल ठीक थी। मेरी जिन्दगी भोग-विलास और ऐंद्रियिक विषय-वासनाओंकी ज़िन्दगी थी–वह एक निकम्मापन था–पाप था। इस तरह 'जीवन एक बुराई और फ़िजूलियत है'–यह उत्तर सिर्फ मेरी अपनीही जिन्दगीसे ताल्लुक़ रखता था, न कि आम इन्सानियत की ज़िन्दगीसे।

मैंने एक सचाईको पकड़ा, जो बादको मुझे धर्म-वचनोंमें भी मिली थी। ''कि मनुष्य प्रकाशकी बनिस्बत अन्धकारको अधिक पसंद करता है, क्योंकि उसके आचरणही पापपूर्ण होते हैं। प्रत्येक पापी इसीलिये प्रकाशसे नफ़रत करता है, और न, प्रकाशमें आनाही चाहता है। क्योंकि उसे अपने पापाचरणोंके प्रकट होनेका भय लगा रहता है।''

मेरी समझमें आ गया कि जीवनका अर्थ समझनेके लिये यह आवश्यक है कि जीवन एक निरी बुराई और फ़िजुलियतसे अधिक भी कुछ हो; और उसके उपरान्त उसे समझनेके लिये विवेक का प्रकाश आवश्यक है। मुझे यह भी स्पष्ट होगया कि बिना समझेही मैं क्यों अब तक इस स्वयम्-सिद्ध सत्यके आसपास चक्कर काटता रहा; यदि हम मानव-जातिके जीवनके बारेमें सोचते या बात करते हैं, तो उस समग्र जीवन को लक्ष्यमें रख कर ही हमें सोचना या अपनी बात कहना चाहिये।

यह सत्य तो सदाही एक सत्य था कि २×२=४ होते हैं, लेकिन मैंने उसे स्वीकार नहीं किया था; क्योंकि यह मान लेने के बावजूद भी कि २×२=४ होते हैं, मैं यह माननेको बाध्य था कि मैं स्वयम् बुरा था। मेरे लिये यही अनुभव करना अधिक महत्त्वकी बात थी कि मैं अच्छा हूँ, २×२=४ होते हैं यह मान लेनेके बनिस्बत, मेरे अपने अच्छे होनेकी सचाई ही मेरे लिये सबसे बड़ी बात थी। मैं अच्छे आदमियोंको प्यार करता था, पर मैं अपने-आपसे नफ़रत करता था, और मैं सत्यको स्वीकार करता था। वह सब आज मुझे स्पष्ट हो गया था–

मेरी यह धारणा रही थी कि तर्क पर आधारित ज्ञान निश्चितही कहीं न कहीं जाकर गलत हो जाता है। मेरी उसी धारणाने व्यर्थके तर्क-वादों के सारे प्रलोभनोंसे

मुझे मुक्त कर दिया। मेरी यह भी धारणा रही थी कि सत्यका समुचित ज्ञान उस पर आचरण करके ही पाया जा सकता है। तदनुसार मुझे अपने ही जीवन-औचित्य पर संदेह होने लगा। मुझे प्रतीत हुआ कि मुझे अपने सीमित दायरेसे बाहर निकल आना चाहिये, अपने आसपास निगाह डालना चाहिये, वास्तविक श्रमिक-वर्गके सादे जीवनको देखना, जानना चाहिये, यह समझना चाहिये कि यही एक मात्र सच्चा जीवन है। मैंने समझ लिया कि अगर मुझे जीवनको और उसके सत्यको जानना है, तो मुझे एक परशोषण-जीवी की ज़िन्दगी न जीकर, एक सच्चा जीवन जीना होगा। समग्र मानवताके संयुक्त जीवनोंमें से जीवनको जो सत्य प्राप्त होता है, उसे स्वीकार करके, उसका एक गम्भीर परीक्षण करना होगा।

जिन दिनोंकी बात मैं कह रहा हूँ, उन दिनों मेरी स्थिति निम्न प्रकार थीः

उस पूरे वर्ष भर, जब मैं पल-पल अपनेसे यही पूछ रहा था कि किसी पिस्तौल या फंदेसे मुझे अपने जीवनका खात्मा कर लेना चाहिए या नहीं, और जब पीछे बयान किये गये विचारोंसे मेरा दिमाग़ परेशान था, तब मेरा हृदय एक बड़ी ही वेधक पीड़ासे आकुल व्याकुल था। ईश्वरकी खोजके अतिरिक्त, अपनी उस पीड़ाको और दूसरा नाम नहीं दे सकूँगा।

ईश्वरकी खोजका यह अनुरोध मेरे विचार-तर्ककी ओरसे नहीं था। वह तो मेरे भीतरकी एक अनुभूति थी, जो मेरी विचारसरणीके ठीक विरुद्ध पड़ रही थी। यह पुकार हृदयके भीतरसे आ रही थी। वह एक प्रकारकी भीतिका भाव था; अपनेसे बाहरकी चीज़ोंके बीच में अपनेको अनाथ और नितांत एकाकी पा रहा था। और मेरे भीतर एक अज्ञात सहायताकी आशाका भाव था, पर मैं नहीं जानता था कि वह आशा मैं किसकी ओर लगाये था।

मुझे याद आ रही है—वसन्त ऋतुके आरंभिक कालके उस एक दिनकी बात। मैं जंगलमें अकेला था, वनकी नाना ध्वनियोंको मैं ध्यानपूर्वक सुन रहा था। और मेरे मनमें वही विचार चल रहा था—जिसे पिछले दो वर्षोंसे मैं लगातार सोचता रहा हूँ, मैं फिर ईश्वरकी खोजमें था।

मैंने अपने-आपसे कहाः

"अच्छी बात है, ईश्वर जैसी कोई चीज नहीं है। मेरी कल्पनाओंसे परे ऐसी कोई सत्ता कहीं नहीं है। मेरे अपने जीवनसे अधिक सत्य और कुछ नहीं है-कुछ नहीं है। कोई भी चमत्कार किसी ऐसी किसी सत्ताको प्रमाणित नहीं कर सकते, क्योंकि सारे चमत्कार मेरी अतर्कनीय कल्पनामेंही तो अपना अस्तित्व रखते हैं"

और मैंने अपने-आपसे पूछाः

"फिर ईश्वरको लेकर मेरे मनमें जो एक भाव जागृत है, और जिसकी मुझे खोज है—वह बात कहाँसे आरही है?"

और इस विचारके आते ही, मेरे अंतरमें जीवनकी आनंदमयी तरंगें हिलोरें मारने लगीं, मेरे चारों ओरका विश्व-जगत् जैसे एक नवीन जीवनसे जी उठा—उसके भीतर एक नया ही सत्य प्रकाशित हो उठा। आनंदका वह उन्मेष जो भी, बहुत देर तक टिका न रह सका। पर मेरी विचार-बुद्धि चैतन्य होकर सोचती ही चली गई।

ईश्वरत्वका यह भाव ही अपने-आपमें ईश्वर नहीं है। यह भाव तो मेरी मनोदशाकी एक परिणति मात्र है। वह तो मेरी ही इच्छाका एक परिणाम है—जिसे मैं चाहूँ तो अपने भीतर उठा सकता हूँ और न चाहूँ तो उठनेसे रोक भी सकता हूँ। यह वह चीज नहीं है-जिसकी मुझे खोज है—और जिसके अभावमें जीवन असम्भव-सा हुआ जा रहा है।

फिर एक बार मेरे भीतर-बाहरका सब कुछ जैसे मिटता-सा दिखाई पड़ा, और फिर अपनेको खत्म कर डालनेका भाव मुझमें प्रबल हो उठा।

इसके बाद अपने भीतर चल रही प्रक्रियाको मैं दोहराने लगा। सैकड़ों बार मैं फिर-फिर उत्साहित होकर हतोत्साहित हुआ। मुझे याद आया कि जब-जब भी ईश्वरका विश्वास मुझमें जागा है—तभी मै जी उठा हूँ। जो बात पहले थी, वही अब भी है, परमात्माको मैं जानने लगता हूँ—कि मैं जीने लगता हूँ, ज्यों-ही मैं उसे भूलने लगता हूँ और उसमें अविश्वास करने लगता हूँ कि मेरी मौत हो जाती है।

मेरी यह आशा-निराशा आखिर चीज़ क्या थी? प्रभुकी सत्तामें जब मैं अविश्वास करने लगता हूँ तो मेरे जीवनकी गति रुक जाती है, उसे पाने की यह धुंधली-सी आशा यदि मेरे मनमें न रही होती तो मैं अपनेको कभीका खत्म कर देता। मैं सचमुच तभी जीता हूँ, जब मेरे भीतर प्रभुका भान होता है और उसे पाने की इच्छा जागृत रहती है। "फिर मुझे और किस बातकी तलाश है?" मेरे भीतर एक आवाज पुकार उठी—"यही वह सत्ता है, वह सत्ता, जिसके बिना जीवन सम्भव ही नहीं होता। प्रभु का भान होना और जीवित रहना, इन दोनों बातोंका मतलब एक ही होता है। परमात्मा ही जीवन है।"

परमात्मा को पाने के लिये ही जियो; जीवन परमात्मा-विहीन होकर नहीं रह सकेगा। मेरे भीतर-बाहर जीवन अपने प्रबलतम रूपमें चैतन्य हो उठा। और उस दिन जो प्रकाश मेरे भीतर जागा, उसने फिर कभी मेरा साथ नहीं छोड़ा।

———

टाल्स्टायका युगदर्शन *

मनुष्य जिस अभीष्टको अपना चरम कर्तव्य मानकर चलता है, उसके सतत विरोधमें ही उसका समूचा जीवन चलता है। यह विपर्यय या विरोध जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें देखनेको मिलता है; फिर वह आर्थिक हो, राजनीतिक हो या अन्तर्राष्ट्रीय हो। कुछ ऐसा लगता है जैसे मनुष्यकी बुद्धि गुम हो जाती है और उसकी श्रद्धा कुछ समयके लिये आच्छन्न हो जाती है; (क्योंकि समूची श्रद्धा खोकर तो उसका जीवन चल ही नहीं सकता है), तभी वह अपनी अन्तर-आत्माकी आज्ञा और अपनी सामान्य विवेक-बुद्धि के भी विरुद्ध आचरण करने लगता है।

अपने आर्थिक और अन्तर्राष्ट्रीय सम्बंधोंमें हम विगत युगोंके बुनियादी सिद्धांतों के सहारे ही चलते हैं। ये सिद्धांत हमारे वर्तमान युगकी मानसिक रुझान; परिस्थितियों और जीवनकी गति-विधिके बिलकुल प्रतिकूल प्रतीत पड़ते हैं।

जो मनुष्य दासत्वको दैवी विधान मानता था और उसे नितान्त आवश्यक समझता था, उसके लिये अपने दासोंका स्वामी होकर रहना भले ही ठीक रहा हो। पर क्या आजके दिन वह जीवन संभव है? पुराने युगका आदमी वंशगत भिन्नतामें विश्वास करता था; इसीपर मनुष्य की ऊँचता और नीचताका आधार था—'हाम Ham' और 'जाफेथ Japheth' के पीढ़ोंरोंकी अलग-अलग परम्परा थी।

---

* 'किंगडम ऑफ गॉड इज़ विदिन यू (ईश्वर अंतरात्मा में हैं)'—से

इसी वंशगत ऊंच-नीचताके आधारपर उस युगका व्यक्ति अपनेसे निचली श्रेणीके अपने मनुष्य-भाइयोंका अपने लाभके लिये दुरुपयोग करता था; पुश्त-दर-पुश्त एक वर्ग दूसरे वर्गका पीड़न करता ही चलता था और इस सबको वह बिल्कुल न्याय्य और उचित मानता था। प्लेतो और अरस्तू जैसे पुराकाल के महानतम दार्शनिकों और मानव-जाति के श्रेष्ठतम गुरुओंने तो दासत्व-प्रथा के औचित्य को स्वीकार कर, उसकी न्याय्यता को हर तरह सिद्ध किया ही है; पर अबसे तीन शताब्दी पहले तकके आदर्श समाजके स्वप्नद्रष्टाओं ने भी जिस वांछित समाजकी कल्पनायें की हैं—उनमेंसे एक भी ऐसी नहीं हैं, जिसमें दास-प्रथाका स्थान न हो।

पुराने युगोंमें, और मध्यकालमें भी यह अत्यन्त ईमानदारीसे सोचा-समझा जाता था कि मनुष्य जन्मसे ही असमान होते हैं; और यह एक आम मान्यता थी कि परशियन, यूनानी, रोमन और फ्रेंच जातियोंके लोग ही एकमात्र समादरणीय और भद्र लोग हैं; पर आज इस सबमें कोई भी विश्वास नहीं करता। आभिजात्य और देशभक्तिके सिद्धांतोंके उत्साही हिमायती स्वयम् आजके दिन अपने ही कथनोंमें विश्वास नहीं कर पाते।

एक बात हम सब अच्छी तरहसे जानते हैं और उसे जाने बिना रह नहीं सकते, चाहे उसकी कोई निश्चित व्याख्या हमने न भी सुनी हो; और न स्वयम् कोई व्याख्या करनेका ही प्रयत्न किया हो। वह बात यही है कि हमारे हृदयोंके भीतर क्रिश्चियन धर्म के उस मौलिक सिद्धांतके सत्यकी एक अन्तर्भूत श्रद्धा सदा जाग्रत है कि—'हम सब उस एक ही परमपिताके बालक हैं—हममेंसे प्रत्येक मनुष्य उस परमपिताका बालक है—फिर चाहे वह कहीं भी रहता हो और कोई भी भाषा बोलता हो; हम सब भाई-भाई हैं—और एक प्रेमके शासन-सूत्रमें बँधे हैं—जिसे उस एकमेव परमपिताने हम सबों के हृदयोंमें प्रतिष्ठित कर रखा है।

हमारे जमानेके मनुष्यका वैचारिक संस्कार चाहे जैसा हो और उसकी शिक्षा चाहे जितनी भी हो, चाहे वह एक शिक्षित उदारमतवादी हो, चाहे जिस भी मत-सिद्धान्तका दार्शनिक वह हो, चाहे जिस प्रणालिकाका वैज्ञानिक वह हो, चाहे जिस

परम्पराका अर्थ-शास्त्रज्ञ वह हो, या फिर किसी भी धार्मिक सम्प्रदायका एक अशिक्षित अनुगामी वह हो—इस युगमें प्रत्येक आदमी एक बात निश्चित रूपसे जानता है कि जीवन और सांसारिक सामग्रीपर मनुष्य-मात्रका समान अधिकार है। कोई भी मनुष्य अपने साथी दूसरे मनुष्योंसे बेहतर या बदतर नहीं है। सभी मनुष्य जन्मसे ही स्वतन्त्र और समान हैं—हर आदमीके भीतर इस बातका एक सहज विश्वास जागृत है। और तभी वह देखता है कि जीवनमें मनुष्य-जाति दो वर्गोंमें बँटी हुई है। एक वे लोग हैं जो ग़रीब और दुखी हैं, जो श्रम करते हैं और पीड़न झेलते हैं, दूसरे वे लोग हैं जो आलसी, निकम्मे, अत्याचारी और विलासी हैं। यह सब वह केवल देखता ही नहीं है, बल्कि चाहे-अनचाहे वह इन दोनोंमेंसे किसी एक वर्गकी श्रेणीमें स्वयम् भी पड़ जाता है; अपने विवेकके विरुद्ध भी वह इस रास्ते जानेको बाध्य होता है। अपने भीतर-बाहरकी इस विषमताका बोध और उसमें हिस्सा बँटानेकी अपनी लाचारी, दोनों ही को झेलनेके लिए वह विवश होता है।

चाहे फिर वह मालिक हो या गुलाम हो, आजके दिन मनुष्य अपने आदर्श और यथार्थकी इस विषमतासे सतत पीड़ित है। जब कि इसके परिणामस्वरूप निपजनेवाले पीड़नको वह अचूक रूपसे जानता-बूझता है।

मानव-जातिका वह बहुसंख्यक भाग जिसे हम जनता कहते हैं, जो कष्ट झेलता है और मजूरी करता है, जिसका जीवन नीरस और निःसत्त्व है, जिसके भीतर जीवन, प्रकाशकी कोई भी किरण नहीं झाँकती, अनन्त अभावोंको झेलते हुए जो जी रहे हैं—वही वे लोग हैं जो 'क्या हो रहा है' और 'क्या होना चाहिए' के बीचके इस तीव्र विरोधको बहुत ही साफ़ तौरपर अनुभव करते और समझते हैं। मानवजातिके दाम्भिक प्रदर्शनों और उसके यथार्थ जीवनगत आचरणोंके इस वैषम्यको यही जनता ठीकसे समझ पाती है।

वे जानते हैं कि वे गुलामोंकी तरह काम करते हैं, कि वे अभावों और अज्ञानके अन्धेरोंमें बर्बाद हो रहे हैं, और वे यह भी जानते हैं कि इन ऊपरके अल्पसंख्यक लोगोंके सुख-भोगोंपर वे अधिकार कर सकते हैं। और यही वह सतर्कता है

जो कटुता उत्पन्न करती है। उनके सारे पीड़नका मूल इसी बातमें है।

पुराने जमानेका गुलाम यह समझता था कि वह तो जन्मसे ही एक गुलाम है, जब कि हमारे युगका एक मजदूर, अपनेको गुलाम अनुभव करते हुए भी यह समझता है कि उसे गुलाम नहीं होना चाहिये। अपनी अतृप्त इच्छा-वासनाओंके कष्टाघातोंको सहन करता हुआ वह जीता है—जब कि वह उस सब कुछका अधिकारी है, और सब-कुछ उसे दिया जा सकता है, जिसके अभावमें वह ये सारी पीड़नाएँ झेल रहा है। मजदूर वर्गकी भाग्य-जनित विषमताओंका यह पीड़न इस विषमताके स्वाभाविक परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाली ईर्ष्या और द्वेषसे और भी दस गुना हो उठता है।

हमारे युग का मजदूर, पुराने युग के गुलाम की अपेक्षा भले ही कम श्रम भी करता होगा, भले ही वह आठ घंटा काम करनेकी प्रणाली स्थापित करनेमें भी क्यों न सफल हुआ हो और वह प्रतिदिन बारह या अठारह आनेकी मजूरी भी क्यों न पाने लगा हो, फिर भी अपने श्रमका कमसे कम ही भाग वह पाता है; क्योंकि वह अपनी मेहनतसे ऐसी चीजें पैदा करता है, जिनका उपयोग वह स्वयं कभी नहीं कर सकेगा; अर्थात् वह अपने स्वयम् के लिये कभी श्रम नहीं करता है; वह निकम्मे और भोगी लोगोंके अहं को तुष्ट करने के लिये मजदूरी करता है। पूँजीपति, मिल-मालिक या उद्योगपति के धन को बढ़ानेके लिये ही वह अपनी आहुति देता है। वह यह भी अच्छी तरह समझता है कि ये सारी चीजें उसी दुनिया में चलती हैं, जहाँ मनुष्य बड़े-बड़े सिद्धान्त-सूत्र बना कर चलता है; जहाँका अर्थ-शास्त्र कहता है कि श्रम ही धन है और अपने लाभ के लिये दूसरेके श्रम का उपयोग करना अन्याय है, जहाँ अवैध आचरण के लिये सजा देने के लिये कानून चलते हैं और जिस दुनिया में ईसा के सिद्धान्त का दावा किया जाता है—उस सिद्धान्त का जो यह सिखाता है कि मनुष्य मात्र भाई-भाई हैं, और यह हर आदमीका कर्तव्य है कि वह अपने पड़ोसी की सेवा करे—और उससे कोई अनुचित लाभ न उठावे।

आज का धनिक यह सब कुछ समझता-बूझता है। और इसीलिये यह स्वा-

भाविक है कि 'दुनिया को जो होना चाहिये' और 'दुनिया जैसी है' इसके बीच के इस विघातक वैषम्य को देखकर आज के श्रमिकको तीव्र वेदना होती है। एक मज़-दूर अपने आपसे यही कहता है कि—"अब तक मैं जो कुछ सुनता आया हूँ और मनुष्यों को जिन सिद्धान्तों का दावा करते देखा है, उसके अनुसार मुझे भी एक स्वतन्त्र आदमी होना चाहिये, जैसा कि हर कोई दूसरा आदमी हो सकता है। मैं आज केवल एक घृणित और तुच्छ गुलाम भर हूँ" स्वयं औरों की घृणा का पात्र होने पर वह आप भी फिर विद्वेष और घृणा से भर उठता है; अपनी स्थिति से वह भाग छूटना चाहता है; अपने पीड़क अत्याचारीको उखाड़ फेंकना चाहता और इस तरह सबके ऊपर वह अपना अधिकार स्थापित करना चाहता है।

वे लोग कहते हैं: 'यह अनुचित है कि एक मजूर पूँजीपतिका स्थान लेना चाहे, या एक गरीब आदमी धनिकका द्वेष करे" पर यह सब मिथ्याचार है। यदि प्रभु ने ही ऐसी किसी दुनियाका विधान किया होता जहाँ मालिक और गुलाम तथा धनवान और गरीब मौलिक रूपसे जुदा-जुदा होते, तब तो अवश्य ही श्रमिक या ग़रीब की धनवान का स्थान छीननेकी चेष्टा अनुचित होती; पर बात दर हक़ीकत ऐसी नहीं है; वह श्रमिक या ग़रीब यह माँग उसी दुनियामें उठाता है जो दुनिया प्रभुके उस धर्मोपदेश का दावा करती है, जिसका कि सबसे पहला सिद्धान्त यही है—कि मनुष्य-मात्र उस एक ही परम पिताके पुत्र हैं और इसलिये वे सब भाई-भाई हैं और एक समान हैं। और मनुष्य चाहे या न चाहे, वह इस बातसे इनकार नहीं कर सकता कि ईसाई जीवनकी सबसे पहली शर्त प्रेम है; और वह प्रेम केवल शब्दों तक ही सीमित नहीं है, उसे आचरणमें आना चाहिये।

इन विषमताओंके कारण शिक्षित मनुष्य तो और भी अधिक पीड़ित होता है। उसे किसी भी चीज़ में यदि श्रद्धा है, जिसपर भी वह विश्वास करता हो, फिर वह भाईचारा हो या कोई मानवता की भावना हो, न सही मानवता की भावना, वह किसी न्यायान्यायको मानता हो, या फिर विज्ञानमें ही उसकी श्रद्धा क्यों न हो; वह निश्चित ही यह अनुभव किये बिना नहीं रहेगा कि उसके जीवनकी परिस्थितियाँ किसी भी

ईसाइयत, मानवता, न्याय-नीति और विज्ञानके विरुद्ध हैं।

वह खूब जानता है कि जीवनकी जिन आदतोंके बीच उसने पर्वरिश पाई है और जिन्हें छोड़नेसे उसे काफ़ी तकलीफ़ होगी, उन्हें आश्रय और समर्थन उसी दलित-पीड़ित श्रमिक वर्गके थका देनेवाले आत्म-घ तक श्रमसे ही मिल सकती है। यानी ईसाइयत, मानवता, न्याय-नीति और विज्ञान (राजनीति-विज्ञान) जिस किसी भी ऐसी चीज़ पर उसकी श्रद्धा हो, उसकी हत्या करके ही वह इस तरह ज़िन्दा रह सकता है। भाईचारा, मानवता, न्याय-नीति और राजनीति-शास्त्रके सिद्धान्तों द्वारा वह अपने मत-विश्वासोंका समर्थन करता है, फिर भी श्रमिक वर्गका पीड़न उसके दैनिक जीवन की एक अनिवार्य आवश्यता है। अपने उसूलोंके बावजूद अपनी लक्ष्य-प्राप्तिकी राह में श्रमिकके इस पीड़नका उपयोग वह बराबर करता हीं चलता है। इस तरीक़ेसे सिर्फ़ वह जीता ही नहीं है, बलिक अपनी सारी शक्तियाँ वह उसी पद्धति को क़ायम रखनेमें ख़र्च करता है, जो कि उसके मत-सिद्धांतोंके ठीक विरुद्ध पड़ती है।

हम सब भाई-भाई हैं: पर प्रतिदिन सवेरे उठकर मेरा भाई या मेरी बहन मेरे लिये निकृष्टतम अहित-साधनका काम करते हैं। हम भाई-भाई हैं: पर हर सवेरे मुझे अपनी सिगार चाहिये, मुझे अपनी शक्कर चाहिये, अपना आईना चाहिये—और मुझे क्या नहीं चाहिये। मुझे वे सारी चीज़ें चाहिये, जिनके उत्पादनमें मेरे कितने ही भाई बहनों को अपने स्वास्थ्य की आहुति देनी पड़ी होगी। तब भी इन चीज़ों के इस्तेमालको मैं महज गवारा ही कर लेता हूँ सो बात नहीं, उल्टे मुझे उन सबकी माँग होती है। हम सब भाई-भाई हैं: और फिर भी किसी बैंक, व्यापारी कम्पनी या दूकानमें नौकरी करके मैं अपना निर्वाह करता हूँ और इस प्रकार अपने भाई-बहनों के जीवन की आवश्यकताओं की क़ीमतें बढ़ानेमें मदद करता हूँ। हम भाई-भाई हैं; और मुझे उस चोर और वेश्याका न्याय करने, उसे सज़ा देने और जेल भेजनेकी तनख़ा मिलती है, जो मेरी अपनी ही जीवन-प्रणालिका के कारण अस्तित्व में आये हैं; और जबकि मैं यह भी अच्छी तरह महसूस करता हूँ कि न तो मुझे उनकी भर्त्सना करनी चाहिये और न उन्हें सजा ही देनी चाहिये। हम सब भाई-भाई

हैं; फिर भी मैं ग़रीबोंसे चुंगी वसूल करके अपनी आजीविका चलाता हूँ, फिर भलेही धनवान अपने ऐशो-इशरत और निकम्मेपनमें लोट रहे हों। हम भाई-भाई हैं: फिर भी मैं उस छद्म-ईसाई सिद्धान्त के प्रचारकी तनखा पाता हूँ, जिसमें मेरा स्वयम् का ही विश्वास नहीं है; और इस प्रकार मैं मनुष्य के सच्चे ईसाई सिद्धान्त तक पहुँचनेमें बाधक होता हूँ; पाधा (आचार्य) और पुरोहितके रूपमें तनखा पाकर मैं लोगोंको उन मामलोंमें धोखा देता हूँ, जो उनके जीवनकी महत्तम वस्तु हैं। हम भाई-भाई हैं: फिर भी मैं अपने भाई से हर बात की क़ीमत वसूल कर लेता हूँ, फिर चाहे मैं उसके लिये किताबें लिखूँ, उसे शिक्षा दूँ या एक चिकित्सकके नाते उसके लिये नुस्खा तजवीज करूँ। हम सब भाई-भाई हैं: लेकिन मुझे तनखा मिलती है—हत्या करनेके लिये, युद्धकी कला सीखनेके लिये और हथियार और दारू-गोला बनानेके लिये और क़िले बाँधनेके लिये।

हमारे उच्च वर्गोंका समूचा अस्तित्व ही बेतरह वैषम्यपूर्ण है; और कोई मनुष्य जितना ही अधिक भावनाशील है, यह विषमता उसके लिए उतनी ही अधिक दुखदायी हो जाती है।

ऐसी जीवन-व्यवस्थाके बीच एक भावुक-चेता मनुष्य अपनी मानसिक शांतिको ज़राभी क़ायम नहीं रख सकता। मान लिया कि अपने विवेककी आत्म-प्रताड़नाओंको दबा देनेमें वह सफल हो जाता है, पर वह अपने भयोंको नहीं जीत पाता।

उच्च वर्गके वे स्त्री-पुरुष जिन्होंने अपनेको खूब ही कड़ा बना लिया है, और अपने विवेकका गला घोंटनेमें भी सफल हो गये हैं, वे भी इस भयसे सतत पीड़ित रहते हैं कि अपने कर्मोंसे वे जिस घृणा और विद्वेषको उभाड़ रहे हैं, कहीं उन्हें उसका शिकार न होना पड़े। श्रमिक वर्गोंमें उनके लिए यह विद्वेष मौजूद है, इस बातको वे भली प्रकार जानते हैं; वे यह भी जानते हैं कि यह विद्वेष कभी मर नहीं सकता है; वे यह भी खूब जानते हैं कि मजदूरोंको जो धोखा वे दे रहे हैं, और उनका जो दुरुपयोग वे कर रहे हैं, उसे मजदूर महसूस करते हैं; और उन मालिकों को यह भी मालूम है कि मजदूरोंने इस पीड़नके पाशको तोड़ फेंकनेके लिए और

अपने अत्याचारियोंसे बदला लेनेके लिए संगठन करना शुरू कर दिया है। उच्च वर्गोंका सुख आगामी संकटके भयसे विषाक्त हो गया है; मजदूर युनियनों, हड़तालों और 'पहली मईके प्रदर्शनों' की छायाने उनके सुख-भोगोंको मलिन कर दिया है। इस आसन्न संकटकी ललकारको सम्मुख पाकर उनका भय अब चुनौती और विद्वेषमें परिणत हो गया है। वे जानते हैं कि मजलूमोंके साथ छिड़े इस संघर्षमें यदि वे एक क्षण भरके लिए भी ढीले पड़ते हैं, तो वे खतम हो जाते हैं, क्योंकि गुलाम दिन-प्रतिदिनके बढ़ते हुए पीड़नसे पहले ही बहुत अधिक विषाक्त हो चुके हैं। और पीड़क यह सब कुछ जानते-देखते हुए भी, अपनी हरकतसे बाज़ नहीं आसकते। क्योंकि वे जानते हैं कि जिस क्षण भी वे अपने कड़े रुखको जरा ढीला पड़ने देते हैं कि उसी क्षण उनकी मौत हो जाती है।

आठ घंटा काम करनेकी पद्धति, स्त्री और बालक-मजदूरोंके श्रमपर नियन्त्रण रखनेवाले क़ानून, पेंशनों, इनामात आदिके द्वारा मजदूरोंके हित-साधनके उपाय करनेके बावजूद भी इस अपने शोषणको वे बराबर चलाये जारहे हैं। यह सब महज ढोंग है, ज़्यादासे ज़्यादा यह कह सकते हैं कि मालिक अपने गुलामको अच्छी हालतमें रखनेकी एक चिन्ता-भर कर लेता है, जो कि जरूरी और स्वाभाविक है। मगर गुलाम तो गुलाम ही रहता है, और मालिक, जो गुलामके बिना रह नहीं सकता है, वह गुलामको मुक्त करना आज सबसे कम चाहता है। शासक-वर्ग का रुख मजूरोंके प्रति उस आदमीका रुख, है जिसने अपने प्रतिद्वन्द्वीको उखाड़ फेंका है और वह उसे अपने पैरोंतले दबाये रखना चाहता है, इसलिए नहीं कि वह अपने हाथसे निकलने नहीं देना चाहता, लेकिन इसलिए कि चूँकि वह जानता है कि यदि एक क्षणके लिए भी वह उसे ढीला छोड़ देगा, तो वह अपनी जान खो बैठेगा, क्योंकि वह पराजित व्यक्ति क्रोधसे पागल हो रहा है, और उसके हाथमें छुरी है।

इसीलिए आज हमारे धनवान-वर्ग, चाहे उनकी अन्तरआत्मा कोमल हो या कठोर हो, ग़रीबोंसे उठाए हुए लाभका भोग नहीं कर सकते—जैसाकि पुराने ज़माने

के लोग किया करते थे, क्योंकि उन्हें अपनी स्थितिके औचित्यका पक्का भरोसा था। आज तो जीवनके सारे सुख-भोग पश्चाताप और भयसे विषाक्त हो गये हैं।

ऐसी भीषण है हमारे युगकी आर्थिक विषमता ! शासक-शक्तिका विपर्यय तो और भी चौंकानेवाला है।

सबसे पहले एक आदमीको स्टेटके क़ानूनोंके प्रति आज्ञाकारी होनेकी शिक्षा दी जाती है। आजके दिन हमारे जीवनका प्रत्येक काम सरकारके निरीक्षणमें होता है। सरकारी आज्ञाओंके अनुसार ही एक आदमी विवाह करता है और उसे तलाक दे दिया जाता है, उसीके अनुसार अपने बच्चोंकी पर्वरिश करता है और कुछ देशोंमें तो सरकार द्वारा दिया हुआ धर्म ही वह स्वीकार करता है। तब कौन-सा वह कानून है, जो मानवजातिके जीवनका निर्णय करता है। क्या मनुष्य उसमें विश्वास करता है? क्या वह उसे सच मानता है? क़तई नहीं। अधिकतर मामलोंमें उस क़ानूनके अन्यायको मनुष्य जानता-समझता है, वह उससे नफ़रत करता है, और फिर भी उसपर अमल करता है। यह मुनासिब ही था कि पुराने ज़मानोंके लोग अपने क़ानूनपर अमल करते थे। वह क़ानून प्रधानतया धार्मिक होता था और वे लोग ईमानदारीपूर्वक उसे सच्चा क़ानून मानते थे, और यह समझते थे कि सभी मनुष्य उसपर अमल करनेको बाध्य हैं। लेकिन क्या हमारे क़ानूनके साथ भी वही बात है? यह माननेसे हम इनकार नहीं कर सकते कि हमारी सरकारका क़ानून शाश्वत नियम नहीं है, लेकिन बहुत-सी सरकारोंके बहुतसे क़ानूनोंमेंसे एक वह भी है; और ऐसे सभी क़ानून समान रूपसे अधूरे होते अधिकतर तो ये कानून बिलकुल झूठे और अन्यायपूर्ण होते हैं। इन क़ानूनोंके सभी पहेलुओंपर सार्वजनिक पत्रोंमें खुली जद्दो-जहद हो चुकी है। यह मुनासिब ही था कि हिब्रू लोग अपने कानूनोंपर अमल करते थे, क्योंकि उन्हें इस बातमें ज़रा भी सन्देह नहीं था कि प्रभुकी अंगुलिने ही उन क़ानूनोंको अंकित किया है; वही बात रोमन लोगोंके लिये भी सच है, क्योंकि वे मानते थे कि उन्हें अपना क़ानून

'इगेरिया' नामकी किसी परीसे प्राप्त हुआ है; या फिर यह बात उन लोगोंके लिये भी मुनासिब हो सकती है, जो यह मानते हैं कि उनके क़ानूनोंको बनानेवाले शासक प्रभुके द्वारा ही नियुक्त किये हुए हैं, और ये धारा-सभाएँ अच्छेसे अच्छा क़ानून बनानेकी सदिच्छा और योग्यता रखती हैं। मगर हम जानते हैं कि ये क़ानून भिन्न-भिन्न दलोंके संघर्षों, आपसके बेईमान लेनदेनों और लाभके लोभमेंसे जन्म लेते हैं; ये सच्चे न्यायके आधार नहीं हैं और न कभी हो ही सकते हैं; और इसलिये आजकी जनताके लिये यह मान लेना असम्भव है कि सरकार और नागरिकताके इन क़ानूनोंका अमल मानव-स्वभावकी न्यायोचित माँगोंका उत्तर दे सकता है। एक अर्सेसे आदमीको इस बातका अहसास हो गया है कि उस क़ानून पर अमल करना व्यर्थ है, जिसकी ईमानदारीमें उसे पूरा-पूरा सन्देह है; और इसलिये जबतक आदमी उस क़ानूनके अधिकारको हृदयसे इनकार करते हुए भी बाहर उसपर अमल करता चलता है, तबतक वह बराबर पीड़ित रहेगा। जब कि एक मनुष्यका समूचा जीवन उन क़ानूनोंकी ज़ंजीरोंमें बँधा है जिनकी अनीति, बर्बरता और कृत्रिमता वह साफ़ महसूस कर रहा है, और सज़ाके डरसे उनपर अमल करनेको बाध्य किया जा रहा है, तो उसे पीड़ित होनेके सिवाय और कोई चारा ही नहीं है।

हम कस्टमकी चुंगियों और आयातके करोंके ज़ुल्मको जानते हैं, फिर भी हम उन्हें चुकानेको बाध्य हैं: अदालतों और उनके अनगिनती अफ़सरोंका समर्थन करनेकी अपनी बेवकूफ़ीको हम जानते हैं, गिर्जोंके उपदेशोंके घातक प्रभावको हम स्वीकार करते हैं और फिर भी हम इन दोनों चीज़ोंको प्रश्रय देते ही चलते हैं; अदालतोंके द्वारा दिये जानेवाले बर्बर और पक्षपातपूर्ण दण्डोंको हम जानते हैं और फिर भी हम उनमें अपना पार्ट अदा करते हैं: हम बखूबी जानते और स्वीकार करते हैं कि धरतीका मौजूदा विभाजन ग़लत और अन्यायपूर्ण है, पर हम उसके प्रति आत्म-समर्पण करते हैं; और बावजूद इस हक़ीक़तके कि हम फ़ौजों और युद्धोंकी आवश्यकतासे इनकार करते हैं, फ़ौजों और युद्धोंको प्रश्रय देनेके लिए

हम मजबूर किये जाते हैं।

लेकिन ये सारी विषमताएँ बहुत छोटी पड़ जाती हैं—उस विषमताकी तुलनामें, जिसका सामना अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्धोंकी हमारी समस्याको करना पड़ रहा है। वह विषमता पुकार-पुकार कर हमसे समाधान माँग रही है, क्योंकि उसके सम्मुख मानवीय जीवन और मानवीय विवेक दोनों ही सूलीपर चढ़े हुए हैं, और वह विषमता है ईसाई धर्म और युद्धके बीचका विरोध।

हम ईसाई राष्ट्र, जिनका कि आध्यात्मिक जीवन एक है, जो बिना किसी जातिभेद या मत-भेदका ख्याल किये, दुनियाके किसी भी कोनेसे जन्म लेकर आनेवाले किसी भी ऐसे विचारका आनन्द और अभिमानपूर्वक स्वागत करते हैं, जो इन्सानियतके लिये स्वास्थ्यदायक और लाभदायक हो; हम लोग जो पृथ्वीके हर देशके गुणियों, परोपकारियों, कवियों, दार्शनिकों और वैज्ञानिकोंको समान रूपसे प्यार करते हैं; हम लोग, जो फ़ादर डेमियनके शूरातनपर ठीक ऐसे ही फ़ख़ करते हैं, जैसे हम अपने किसी वीरपर अभिमान करते हैं; हम लोग जो फरासिसी, जर्मन, अमेरिकन और इंगिलश सबको प्यार करते हैं, और मात्र उनके गुणोंकी ही प्रशंसा करके नहीं रह जाते, बल्कि एक हार्दिक मित्रताके नाते हम उनसे मिलना चाहते हैं; हम लोग, जिन्हें किसी विग्रहके सम्मुख आनेपर उनके साथ युद्ध करनेकी बात सोचने-भरसे हमें धक्का लगेगा,—वही हम लोग जब अपने सामने किसी ऐसी सम्भावनाकी तस्वीर खड़ी करते हैं कि जिसमें किसी सुदूर भविष्यके दिन हमारे बीच कोई ऐसा विग्रह खड़ा हो जाये कि जिसका फ़ैसला खून-खराबी से ही हो सके, और हममेंसे किसी भी राष्ट्रके लिये यह बाध्यता हो जाय कि उस अनिवार्य दुर्घटना (ट्रेजेडी) में उसे अपना पार्ट अदा करना पड़े—तो हम इस विचार मात्रसे थर्रा उठते हैं।

नेपोलियनके महायुद्धोंके मैदानोंमें भी शायद जितने सिपाही नहीं रहे होंगे, उतने सिपाहियोंकी फ़ौजें आजके दिन का योरप रख रहा है। कुछ को छोड़ कर, हमारे महाद्वीपका प्रत्येक नागरिक, अपनी ज़िन्दगीके कई बरस, फ़ौजी बैरकों में काटने

को मजबूर किया जाता है। क़िले, शस्त्रागार और लड़ाके तैयार किये जाते हैं, नई क़िस्मके अग्नि-विस्फोटक शस्त्र ईजाद किये जाते हैं, और न कुछ समयके बाद ही उनके स्थान पर और भी नये शस्त्र आ जाते है। दुखके साथ हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि यह इस कारण सम्भव है, कि विज्ञान, जिसका उपयोग सदा और सर्वथा इन्सानियतके कल्याणके लिये होना चाहिए, मनुष्यके नाशमें सबसे बड़ा योग दे रहा है; कम से कम समयमें अधिक से अधिक मनुष्योंको मारनेके नित नये साधन आज विज्ञानके हाथों ईजाद हो रहे हैं।

"क़त्ले-आमके इन प्रचण्ड आयोजनोंमें और इन बेशुमार फौजोंके निर्वाहमें करोड़ों-अरबों रुपया जाया हो रहा है; यही रुपया यदि जनताके शिक्षण, और सार्वजनीन सुधारके अत्यन्त महत्वपूर्ण कामोंमें खर्च किया जाये तो तमाम इन्सानियत और सामाजिक समस्याको सम्पूर्णःरूपसे सुलझा देने के लिए काफ़ी हो सकता है।

"अपनी सारी वैज्ञानिक सफलताओंके बावजूद यूरप आज भी अपने को भयानकतम बर्बरताओंके उस मध्य-युगसे जरा भी बेहतर नहीं पाता। हर आदमी उस स्थितिको लेकर रो रहा है जिसे न तो युद्ध ही कह सकते हैं और न शांति, और वह उससे मुक्त होने के लिए छटपटा रहा है। सरकारोंके धनीधोरी बड़े ज़ोरोंसे इस बात की घोषणा करते हैं कि वे शांति चाहते हैं; और इन शांतिकी शाब्दिक घोषणाओं के जरिये वे एक-दूसरे की प्रति-स्पर्धा करते हैं। लेकिन उसके ठीक अगलेही क्षण वे अपनी धारा-सभाओंमें अपनी शस्त्र-शक्ति बढ़ाने के लिए प्रस्ताव करते हैं, और इस प्रस्ताव की क़ैफ़ियत वे यह कर कह देते हैं कि शांति क़ायम रखने के लिए यह सावधानी रखना ज़रूरी है।

"पर यही शांति तो हमारा लक्ष्य नहीं है, और कोई भी राष्ट्र इस शांतिके भ्रम से धोखा नहीं खा सकता। सच्ची शांतिके मूलमें पारस्परिक विश्वास होना चाहिए। पर ये उत्तेजक शस्त्रीकरणकी योजनाएँ यदि शत्रुत्वकी खुली घोषणा नहीं करती, तब भी कमसे कम भिन्न-भिन्न राष्ट्रोंके बीच पलनेवाले एक गुप्त अविश्वासकी ओर अवश्य संकेत करती हैं। कोई व्यक्ति अपने पड़ोसीके प्रति मित्रताका भाव बतानेके

के लिए, यदि उसे अपने घर बुलाकर उससे किसी योजना में परामर्श लेता है, और हाथमें भरी हुई पिस्तौल लेकर अपने उस मित्रके आगे अपनी योजना पेश करता है, तो उस आदमीको हम क्या कह कर पुकार सकते हैं ?

"सरकारोंकी सैनिक नीति और शांतिके आश्वासनोंके बीच यही वह भीषण विषमता काम कर रही है, जिसे प्रत्येक देश के अच्छे नागरिक किसी भी क़ीमत पर खत्म कर देना चाहते हैं।"

किसीको भी यह जानकर हैरत होगी, कि टर्की और रूस के अलावा, समूचे योरपमें प्रतिवर्ष ६०,००० आत्म-हत्याएँ होती हैं, और हर आत्म-हत्या के पीछे कुछ ठोस कारण होता है; और यदि इन आत्म-हत्याओंकी संख्या कुछ कम पड़ जाती है तो वह और भी ग़ौर करने लायक़ बात हो जाती है। कोई भी व्यक्ति यदि आज अपने सिद्धान्तों और अपने व्यवहार के बीच के विरोध की जाँच करता है तो वह अपने को एक गहरी निराशा के गड्ढे में उतरा हुआ पाता है। आज के दिन यदि हम व्यक्ति के जीवन में रहने वाली सिद्धांत और आचरणकी विषमताको अलहेदा हटाकर, इसी बात पर ग़ौर करें कि ईसाइयत का दावेदार यूरप किस भयानकताके साथ युद्ध-प्रिय होता आ रहा है, तो हमें मानवीय विवेक के अस्तित्व में ही सन्देह होने लगेगा, और हमारा यही जी चाहेगा कि आदमीकी इस बर्बर और पागल दुनियाँसे हम भाग छूटें और कहीं जाकर अपने जीवनको समाप्त कर दें।

इस बातकी पूरी प्रतीति मनुष्यको पागल बनाने और उसे आत्मघातके लिये प्रेरित करनेको काफ़ी होती है; और यही कारण है कि अकसर-औक़ात ऐसी आत्म-हत्याएँ सिपाहियोंके बीच ही अधिक होती हैं।

एक मिनिट रुककर ग़ौर करनेपर ही हमारी समझमें आ जाता है कि क्यों हमें अनिवार्यतः इसी निष्कर्ष पर पहुँचना पड़ता है।

यही चीज़ हमें मनुष्यके भीतरकी इस भयानकतम निराशाका भेद भी देती है, जिसके कारण लोग अपनेको शराब, तम्बाकू, ताश-बाज़ी, अख़बार-वाचन, निरर्थक मुसाफ़िरियों और दूसरे मुख्तलिफ़ क़िस्मके दुर्व्यसनों और ऐश-आरामोंमें

ग़र्क़ कर देते हैं। एक अनिवार्य तक़ाजेके साथ लोग इन मनोरंजनोंमें इस क़दर डूबे रहते हैं, गोया कि वे कोई जीवनके गम्भीरतर कर्म हैं; और बात कुछ ऐसी ही हो भी गई है। यदि लोगोंके पास अपने बचावका ऐसा कोई रास्ता नहीं होगा, तो वे लाचार होकर अपनेको मार ही डालेंगे, क्योंकि ऐसी तीव्र विषमताओंको लेकर चल रही जिन्दगी दूभर हो जाती है, और आजके दिन हममेंसे ज़्यादातर लोग ऐसी ही जिन्दगी जी रहे हैं। अपने अन्तरतमकी श्रद्धाओंके ठीक विरुद्ध ही आज हम जी रहे हैं। हमारे आर्थिक और राजनैतिक सम्बन्धोंमें यह विरोध बहुत ही स्पष्ट है और जहाँ एक ओर ईसाई सिद्धान्तको भाई-चारेका प्रेम है और दूसरी ओर हमारी वे सैनिक तैयारियाँ चल रही हैं, जो आदमियोंको लाचार करती हैं कि वे एक दूसरेकी जान लेनेको हर घड़ी तैयार रहें। यानी हर आदमीको एक बारगी ही ईसाई और एक मुस्तैद-सिपाही होकर चलना है। इस चीज़में तो यह विरोध बहुत ही अचूक रूपसे खुलकर सामने आता है।

जनताके भीतर मौजूदा जीवन-व्यवस्थाको बदल डालनेकी जो चेतना दिन-ब-दिन बढ़ रही है, उसे दबानेके लिए उच्चवर्गके शिक्षित लोग बड़ी-बड़ी कोशिशें कर रहे हैं। इधर जिन्दगी बिना अपनी दिशा बदले ही विकसित होती हुई जटिल-तर होती जा रही है। और इस तरह मानवीय अस्तित्वकी ये विषमताएँ और यंत्रणाएँ ज्यों-ज्यों आगे बढ़ रही हैं, मनुष्य इस विरोधकी पराकाष्ठा पर पहुँच रहा है। इस पराकाष्ठाका एक सबसे बड़ा उदाहरण हमें सैनिक-संघटनामें मिलता है।

आमतौर पर यह माना जाता है कि यह सैनिक-संघटना और उसके साथ-ही बढ़ती हुई शस्त्रीकरणकी तैयारियाँ और उसके फलस्वरूप बढ़नेवाले टैक्स और मुल्कोंके राष्ट्रीय क़र्ज़े, यूरोपीय राज-कारणमें एक ख़ास तरहकी गर्दिश आ जानेके कारण इत्तिफ़ाक़न हो रहे हैं; और यह भी मान लिया जाता है कि एक ख़ास तरहकी राजनीतिक पुनर-संघटना हो जानेके बाद, आन्तरिक जीवनमें बिना कोई परिवर्तन लाये ही, ये सारी तकलीफ़ें रफ़ा हो जायेंगी।

लेकिन यह एक भयंकर ग़लती है। बाहरकी यह सार्वजनीन फौजी-संघटना मनुष्यके उस भीतरी विरोधका ही परिणाम है, जो चुपचाप उसकी सामाजिक परि-कल्पनामें घुसकर घर कर बैठा है। मनुष्यने आज एक ख़ास हद तक जब अपना भौतिक विकास कर लिया है, तो वही अन्तर्गत विरोध अपनी चरम सीमा पर पहुँच कर हमारे सामने स्पष्ट हो गया है।

एक विशिष्ट सामाजिक जीवन-निर्धारण (Conception), कुटुम्बों, जातियों और सरकारोंकी अटूटनीय शृंखलाके भीतर होकर, जीवनके मूल्यको एक व्यक्तिसे समूची मानव-जाति तक व्याप्त कर देती है।

सामाजिक जीवन-निर्धारणके अनुसार यह माना जाता है, कि चूँकि जीवनकी सार्थकता सम्पूर्ण मानवजातिके योगमें जाकर सम्पन्न होती है, इसलिये प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छासे ही, सम्पूर्ण मानवजातिके हित साधनके लिये अपने स्वार्थोंकी कुर्बानी करेगा। कुटुम्बों और कबीलों जैसे मानव-समूहोंके साथ यह बात अवश्य सच रही है।

पर ज्यों-ज्यों समाज-व्यवस्थाएँ अधिक जटिल होती गईं, और सामाजिकता विस्तार पाती गई, त्यों-त्यों यह पाया जाने लगा कि व्यक्ति अपने दूसरे मानव-बन्धुओंकी बलि देकर भी अपने व्यक्तिगत स्वार्थ साधनेका प्रयत्न करने लगा; परिणाम यह हुआ कि सत्ता और शक्तिके ज़ोरसे यानी हिंसाके द्वारा बलात् व्य-क्तियोंको आत्म-समर्पण करानेकी आवश्यकता अनिवार्य हो पड़ी।

सामाजिक जीवन-निर्धारणके हिमायती लोग सत्ता यानी हिंसा को अक्सर नैतिकताके साथ जोड़ देनेकी कोशिश करते हैं; पर यह सामंजस्य सर्वथा असम्भव है।

नैतिक प्रभावका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपनी इच्छाओंको ही बदल डालता है, और इस प्रकार वह स्वेच्छतया ही उस दानके लिये तैयार हो जाता है, जिसकी कि माँग उससे की जाती है। जो मनुष्य नैतिक प्रभावके प्रति आत्म-समर्पण करता है, उसे उन नैतिकताके नियमोंके अनुरूप अपने आचरणोंको ढालने

में आनन्द आता है; जब कि सत्ता, जिस अर्थमें आज यह शब्द आमतौर पर समझा जाता है, एक बलात्कारी साधन है, जिसके द्वारा मनुष्यको अपनी मर्जीके खिलाफ़ आचरण करनेको मजबूर किया जाता है। सत्ताके प्रति आत्म-समर्पण करनेवाला मनुष्य, अपनी इच्छासे कुछ नहीं करता, वह तो महज़ दबावके कारण झुकता है। और मनुष्य से उसकी मर्जीके खिलाफ़ कुछ भी करवानेके लिये या तो किसी शारीरिक हिंसाकी धमकी देनी पड़ती है या प्रत्यक्ष रूपसे किसी हिंसाका उपयोग करना पड़ता है : उसे उसकी आजादीसे वंचित किया जा सकता है, उसे कोड़े मारे जा सकते हैं, उसके हाथ पैर काट लिये जा सकते हैं, या इस क़िस्मकी सज़ाओंकी उसे धमकी दी जा सकती है। वर्तमानमें और भूतकालमें भी इसी चीज़को सत्ता माना गया है।

शासकोंने इन हकीक़तों पर पर्दा डालनेकी निरन्तर कोशिशें की हैं, और सत्ताको सदा एक नया ही अर्थ प्रदान करना चाहा है। मगर बावजूद इस सबके सत्ताका असली मतलब सदा रहा है वही रस्सा और जंजीर जिससे बाँधकर एक मनुष्यको घसीटा जाता है, वह चाबुक जिससे उसे कोड़े मारे जाते हैं, वह छुरा और वह कुल्हाड़ी जिससे मनुष्यके अंग-प्रत्यंग, नाक, कान और सिर उड़ा दिये जाते हैं। इस क़िस्मकी धमकियों या ऐसे कर्मोंकी तैयारी का नाम ही सत्ता है। नीरो और चँगेजखाँके जमानेमें यही होता था, और आज दिनकी उदारतम सरकारोंके शासनमें भी यही होता है, फ्रांस और अमेरिकाके प्रजातन्त्रोंमें भी यही होता है। यदि मनुष्य सत्ताके हाथों आत्म-समर्पण करता है, तो वह केवल इसलिए कि उसे इस बातकी दहशत बनी रहती है कि यदि वह सत्ताका विरोध करेगा तो उसपर जुल्म ढाया जायेगा। सरकारकी सारी माँगें, मसलन ये टैक्स-वसूलियाँ, और सार्वजनिक कर, निर्वासनके दण्ड और जुर्माने वगैरह, जिन्हें मनुष्य स्वेच्छतया झेलता-सा दीखता है, मनुष्यको हिंसाकी धमकी देकर या उसका हिंसात्मक पीड़न करके उससे बलात्कारपूर्वक करवाई जाती हैं। पाशविक हिंसा ही सत्ताओंका मूलाधार है।

फौजी-संघटनाके द्वारा इस हिंसक नीतिका परिचालन संम्भव होता है, इस फौजी संघटनामें समूचा सशस्त्र-सैन्य एक व्यक्तिकी तरह काम करता है—एक ही इच्छाके शासनसे वह चालित होता है। एक ही इच्छाके प्रति आत्मार्पण करनेवाला यह सशस्त्र मनुष्योंका गिरोह फौजोंका रूप लेता है। ये फौजें ही सदासे सत्ता का आधार रही हैं, और आज भी हैं; और महासेनापतियोंके भीतरसे व्यक्त होकर ही वह सदा अपना काम करती है। और आदि-दिनसे दुनियाके प्रत्येक सम्राटकी, रोमन सीजरोंसे लगाकर रूसी और जर्मन सम्राटों तककी, सबसे बड़ी चिन्ता यही रही है कि वे अपनी फौजोंकी रक्षा करके उन्हें खुश रख सकें; क्योंकि वे मन ही मन यह अच्छी तरह जानते थे कि जबतक फौज उनके साथ है तभीतक सत्ता उनके हाथ है।

सत्ताको क़ायम रखनेके लिये नित्य प्रति बढ़ाई जानेवाली फौजों और उनकी क़वायदोंने सामाजिक जीवन-निर्धारणके भीतर एक घुलनशील तत्वका प्रवेश करा दिया है।

समयके साथ ज्यों-ज्यों उसकी शक्ति बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों सरकारी सत्ता, अपनी आन्तरिक हिंसाको निर्मूल कर डालनेके बाद भी, जीवनमें हिंसाके नव-नवीन उपकरणोंका प्रयोग करती है और इन हिंसाके साधनोंकी मारकता भी प्रबलतर होती जाती है। समाजके व्यक्ति-सदस्योंके पारस्परिक व्यवहारकी हिंसासे जो भी सरकारी सत्ताकी हिंसा प्रकटमें बहुत कम दिखाई पड़ती है, क्योंकि सत्ताकी हिंसा सीधे झगड़ोंमें व्यक्त न होकर पीड़नमें व्यक्त होती है; पर सत्ताके ही रूपमें जाकर हिंसा अपनी चरम-सीमापर पहुँचती है।

इससे अन्यथा कुछ सम्भव ही नहीं है; क्योंकि सत्ताका अधिकार मनुष्यको केवल बिगाड़ता ही नहीं है, बल्कि जाने-अनजाने, शासक सदा अपनी शासित प्रजाको अधिकाधिक निर्बल बना देनेकी चेष्टा करते रहते हैं,-क्योंकि प्रजा जितनी ही अधिक अबल होगी, उतने ही उसको दबाकर रखनेके लिये कम शक्तिकी जरूरत होगी।

इस प्रकार पीड़ित को दबाने के लिये काममें लाई जानेवाली हिंसा अपनी

चरम-सीमा तक पहुँचाई जाती है, और सिर्फ वह वहीं जाकर रुकती है, जहाँ सोनेका अण्डा देनेवाली मुर्गीको मार नहीं दिया जाता है। लेकिन यदि मुर्गी अंडा देना बंद कर दे, जैसा कि अमरिकी इंडियनों, फिज़ीके द्वीपवासियों और नीग्रो-लोगोंने किया था, तो उसे मार भी डाला जाता है; हित-चिन्तकों के सारे विरोधोंके बावजूद ये सरकारें अपने इन हत्यारे तरीक़ों से बाज़ नहीं आतीं।

इस सचाई का सबसे अधिक सारभूत प्रमाण है आजके युगके मजदूर-वर्गकी स्थिति, जो चारों ओरसे सही मानोंमें निरे सर्वहारा हैं।

उच्चवर्गों द्वारा मजदूरकी स्थिति सुधारनेके दाम्भिक प्रयत्नोंके बावजूद, दुनियाका समूचा श्रमिकवर्ग आज एक अटूटनीय फौलादी शासनके पैरों-तले रोंदा जा रहा है। यह बर्बर शासन श्रमिकको केवल इतना ही देना चाहता है कि जिस पर वह किसी तरह ज़िन्दा भर रह ले, ताकि उसकी जरूरतें बनी रहें और उनसे लाचार होकर वह अथक श्रम करता ही रहे, जिस श्रमका फल भोगेंगे उसके वे मालिक—उसके वे विजेता।

यह सदासे होता आया है कि जब कोई सत्ता अपने आपमें बढ़ती हुई बहुत लम्बे अरसे तक चली चलती है, तो उसके प्रति आत्म-समर्पण करनेवालों के हिस्सेके सारे लाभ विफल हो जाते हैं, और उससे होनेवाली हानियाँ कई गुनी ज़्यादा हो जाती हैं।

लेकिन अभी कल तक भी मनुष्य इस हक़ीकतसे अनजान रहा है। अधिकतर लोग तो बड़े निर्दोष मनसे सदा यही सोचते रहे हैं कि सरकारें उनके लाभके लिए और उन्हें नष्ट होनेसे बचाने के लिए ही बनाई गई हैं। और यह ख़्याल कि आदमी सरकारोंके बिना भी रह सकता है, एक निहायत वाहियात और घातक बात मानी जायगी; और उसके सारे भयों और ख़तरोंके साथ इसे 'अराजकवादका सिद्धान्त' कहकर पुकारा जायगा।

मनुष्य सरकारमें कुछ इस तरह भरोसा करता आया है, मानो वह एक चीज़ है जो सिद्ध हो चुकी है और अब उसके औचित्यके लिये किसी भी प्रमाण की

ज़रूरत नहीं रह गई है। चूँकि आज तक दुनियाके सभी राष्ट्रोंने सरकारोंके रूपमें ही विकास किया है, इसलिये सरकार सदा मानव-जातिके विकासकी एक अनिवार्य शर्त बनकर रहेगी।

सैकड़ों ही नहीं, बल्कि हज़ारों बरसोंसे यही होता चला आया है और सरकारों के प्रतिनिधि लोगोंमें सदा इस भ्रांतिको बनाये रखनेके प्रयत्न करते आये हैं।

रोमन सम्राटोंके ज़मानेमें जो बात थी, वही आज भी है। यदि सत्ताके निकम्मे-पनका और उसमें बाधा डालनेका ख़्याल आदमीकी चेतनामें घर भी कर जाये, तब भी सत्ता सदा क़ायम रह सकती है, यदि सरकारें अपनी सत्ताको बनाये रखनेके लिये फौजोंको बढ़ाना आवश्यक न समझें।

यह एक आम मान्यता है कि सरकारें दूसरे राष्ट्रोंसे अपनी रक्षा करनेके लिये ही फौजें बढ़ाती हैं, लेकिन वे यह समझनेमें चूक जाते हैं कि सरकारें ख़ास तौरपर फौजें अपनी गुलाम प्रजासे अपनी रक्षा करनेके लिये ही रखती हैं।

यह जरूरत सदा रही है, और शिक्षाके प्रचार, तथा राष्ट्रोंके पारस्परिक सम्बन्धोंके बढ़नेके साथ यह आवश्यकता और भी बढ़ गई है। और मौजूदा ज़मानेमें साम्यवादी, समाजवादी, अराजकवादी और मज़दूर-आन्दोलनोंको मद्दे-नज़र रखते हुए तो यह जरूरत आज ही सबसे अधिक है। सरकारें इस बातको ख़ूब समझती हैं और इसी कारण अपनी रक्षाके प्रधान साधन—एक सुव्यवस्थित सेनाको नित्य बढ़ाती जाती हैं।

यदि किसी श्रमिकके पास ज़मीन नहीं है, और अपने और कुटुम्बके निर्वाहका साधन धरतीसे जुटानेके अपने कुदरती अधिकारका उपयोग यदि वह नहीं कर पा रहा है, तो इसका कारण यह नहीं है कि लोग इस बातका विरोध करते हैं; बल्कि यह तो इसलिये होता है कि श्रमिकको ज़मीनका हक देने या उसे छीन लेनेका अधिकार कुछ व्यक्तियोंको ही प्राप्त होता है, जिन्हें ज़मींदार कहा जाता है। और यह अस्वा-भाविक व्यवस्था फ़ौजोंके ज़ोरसे कायम रखी जाती है। यदि मज़दूरोंके द्वारा कमाई जाकर संचित होनेवाली अतुल धनराशि सार्वजनिक सम्पत्ति नहीं मानी जाती है,

बल्कि वह कुछ चुनिन्दा लोगोंके उपभोगकी वस्तु मानी जाती है; यदि कुछ लोगों को मजदूरोंसे टैक्स वसूल करनेका अधिकार दे दिया जाता है, और उन्हें यह अधिकार भी दे दिया जाता है कि वे उस धनका मनमाना उपयोग करें; यदि मजदूरोंकी हड़तालोंको दबा दिया जाता है, और पूँजी-पतियोंकी ट्रस्टोंको प्रोत्साहित किया जाता है; यदि धार्मिक और नागरिक शिक्षाके बीच चुनाव करने और बच्चों की शिक्षाके बारेमें निर्णय देनेका हक़ कुछ ही लोगों तक सीमित हो जाता है, यदि चन्द दूसरे लोगोंको यह अधिकार दे दिया जाता है कि वे क़ानून बनायें, और उसे मानने को सब लोगोंको बाध्य किया जाये और मानवीय जीवन और सम्पत्तिपर नियंत्रण रखनेका अधिकार वे भोगते हैं—तो यह सब इसलिये नहीं होता है कि लोग ऐसा चाहते हैं, या यह कोई प्राकृतिक विकासका ही परिणाम है, बल्कि सरकारें जानबूझकर ही यह सब करवाती हैं, अपने और अपने शासक-वर्गके लाभके लिये, और यह सब चलाया जाता है पाशविक हिंसाके ज़ोरसे।

यदि आज हर आदमी यह बात नहीं जानता है, तो वह कल इसे जान जायगा; अगर मौजूदा व्यवस्थामें परिवर्तन लानेकी कोई भी कोशिश की गई।

इसीलिये सरकारों और शासक-वर्गको सबसे बड़ी जरूरत होती है फौजोंकी, उस जीवन-व्यवस्थाको बरकरार रखनेके लिये, जिसमें जनताकी आवश्यकताओंको कोई स्थान नहीं होता बल्कि उल्टी वह उसमें बाधक ही होती है; वह जीवन व्यवस्था बरक़रार रक्खी जाती है सरकारों और शासकवर्गोंके अपने लाभके लिये।

हर सरकारको अपनी सत्ता अमलमें लानेके लिये फौजोंकी जरूरत होती है, ताकि वह अपनी प्रजाके श्रमका लाभ उठा सके, पर कोई भी सरकार अपने आपमें अकेली तो नहीं है: हर सरकार के साथ उसके आसपासके देशोंकी दूसरी सरकारें भी होती हैं, जो कि ठीक उसी तरह अपनी प्रजा से बलात् श्रम करवाकर उसका लाभ उठा रही हैं। और इनमें से हर सरकार अपने पड़ोसकी दूसरी सरकारपर हमला करके, उस सरकारके द्वारा अपनी प्रजाके शोषणसे संचित उसके धनपर क़ब्जा करनेको सदा तैयार रहती है। इस तरह हर सरकारको अपने धंधेके लिए ही नहीं,

बल्कि दूसरी पड़ौसी सरकारसे अपने लूट के मालकी रक्षा करनेके लिए फ़ौजकी जरूरत होती है। इस तरह हर सरकार अपनेको बाध्य पाती है कि अपनी फ़ौजको बढ़ानेमें वह पड़ौसी सरकारको मात दे दें। अब से डेढ़-सौ वर्ष पहले मान्टेस्क्वीने ठीक ही कहा था कि फ़ौजोंका विस्तार एक छूतका रोग है जो गुणानुगुणित होता ही जाता है।

यदि एक सरकार अपनी प्रजाको आतंकित करने के लिए अपनी फौज बढ़ाती है, तो उसकी पड़ौसी सरकार चौकन्नी हो जाती है और वह भी उसका अनुकरण करती है।

आज फौजें लाखों करोड़ोंकी संख्यापर पहुँच रही हैं, महज विदेशी आक्रमणके डरसे यह नहीं हो रहा है। फौजोंकी वृद्धि सबसे पहले अपनी ही प्रजाकी विद्रोह की चेष्टाओंको दबानेके लिये की गई थी। फौजोंके विस्तारके कारण परस्परापेक्षी हैं—वे एक दूसरेपर निर्भर करते हैं, देशकी प्रजाके आंतरिक विद्रोहको दबानेके लिये फ़ौजोंकी आवश्यकता होती है, साथ ही विदेशी आक्रमणोंसे देशकी रक्षाके लिये भी वे आवश्यक होती हैं। एक कारण दूसरे कारणपर निर्भर करता है। सरकारोंकी स्वेच्छाचारिता ठीक उनकी आंतरिक शक्ति और सफलताके अनुपातमें ही बढ़ती है, और उनकी आंतरिक स्वेच्छाचारिता बढ़नेके साथ ही विदेशी आक्रमणकी वृत्ति और संभावना बढ़ती जाती है।

अपने शासनके समूचे ढाँचेको सहारा देनेके लिए जब सरकार एक आम-फ़हम फ़ौजी संघटना करती है, तो वह सरकारी बलात्कारकी इस पद्धति का आखिरी कदम होता है; प्रजाके लिये भी सत्ताकी आज्ञा पालनेकी वह चरम-सीमा होती है। यह द्वार-तोरणका वह मूलभूत पत्थर है, जिसपर सारी दीवारें टिकी हैं, और जिसके हट जाने पर सारी इमारत ढह जायगी। आज वह समय आ गया है जब सरकारों के बढ़ते हुए अनाचारोंने और उनके आपसी झगड़ोंने यह स्थिति पैदा कर दी है, कि वे सरकारें आज अपनी प्रजाओंसे उस सीमा तक आर्थिक और नैतिक कुरबानी माँग रही हैं, जब कि हर आदमी रुककर अपने आपसे पूछ रहा है,—'क्या मैं क़ुरबानी कर

सकता हूँ? और यह कुरबानी मुझे किसके लिए करनी होगी?" सरकार और शासन के नामपर इन कुरबानियोंकी माँग होती हैं। सरकारके नामपर मुझे वह सब कुछ बलिदान कर देनेके लिए मजबूर किया जाता है,जो मनुष्यके जीवन का सार-सर्वस्व होता है—यानी सुख-शांति, कुटुम्ब और वैयक्तिक आत्मसम्मान। आखिर वह सरकार है क्या चीज जिसके नामपर ऐसी उत्पीड़क कुरबानियाँ माँगी जाती हैं? और क्या उपयोग है इस सरकारका?

हमसे कहा जाता है कि सबसे पहले तो सरकार इसलिये जरूरी है, कि यदि वह न होती तो किसी भी आदमीका जीवन दुष्ट लोगोंकी हिंसा और आक्रमण से सुरक्षित नहीं रह सकता था। दूसरे यह कि सरकारके अभावमें हम निरे बर्बर और असभ्य होते,क्योंकि तब हमारे पास धर्म, नैतिकता, शिक्षा-दीक्षा, व्यापार, व्यवसाय, वाहन-व्यवहारके साधन आदि कुछ न होता और न कोई दूसरी सामाजिक संस्थायें ही होतीं, और तीसरे यह कि सरकारके अभावमें हम सदा विदेशी आक्रमणों के शिकार बने रहेंगे।

हमसे कहा जाता है कि 'सरकारें' न होतीं, तो हमारे अपने देशमें ही हम अत्याचारियोंकी हिंसा और आक्रमणोंके भोग बनते।

लेकिन कौन हैं वे अत्याचारी जिनकी हिंसा और आक्रमणोंसे सरकार और उसकी फौजें हमारी रक्षा करती हैं? अबसे तीन या चार शताब्दी पहले ऐसे लोग जरूर होते थे, जब आदमीको अपने सैनिक कौशल और भुजबलका घमंड होता था और जब आदमी अपने दूसरे मानवीय बन्धुको मारकर अपनेको बहादुर साबित करता था, पर आज तो ऐसी कोई बात ही नहीं है। हमारे जमानेके लोग न तो शस्त्र रखते ही हैं और न उनका उपयोग करते हैं। वे अपने पड़ोसीके प्रति मानवता और दयाका भाव रखनेमें विश्वास करते हैं और वे उतनाही सुख-शांतिपूर्ण जीवन जीना चाहते हैं, जितना कि हम स्वयम् चाहते हैं। इससे जाहिर है कि आततायियोंका यह असाधारण वर्ग, जिससे कि सरकार हमारी रक्षा करती है, तो अब अस्तित्वमें ही नहीं है।

वल्कि आज तो इससे ठीक उल्टी ही बात कही जासकती है। सरकारोंके ये पुराने चलनके नृशंस दण्ड-विधान, उनके ये जेलखाने और फाँसीके फन्दे और उनकी ये किरचें और संगीनें, जो आजके सामान्य नैतिक धरातलसे इतने अधिक नीचे हैं और जो जन-सामान्यकी नैतिकताको उन्नत करनेके वजाय उसके तलको और भी अधिक गिरानेवाले हैं; और जिसके परिणाम-स्वरूप अपराधियों की संख्या घटनेके वजाय उल्टी वढ़ती ही जाती है।

ऐसा कहा जाता है कि 'सरकारके अभावमें शैक्षणिक, नैतिक, धार्मिक या अन्तर-राष्ट्रीय या और किसी भी प्रकार की संस्थाएँ नहीं होंगी; पारस्परिक आदान-प्रदानके कोई साधन भी सम्भव नहीं होंगे। सरकारोंके अभावमें हमारे सबके लिये आवश्यक संगठन भी क़ायम नहीं रह सकेंगे।

आजसे कई शताब्दियों पहले ऐसे तर्कको आधार मिल सकता था। सम्भव है वह समय भी रहा हो, जब मनुष्यके पास अन्तर-राष्ट्रीय आदान-प्रदानके कोई साधन नहीं रहे हों, और तब विचारके पारस्परिक लेन-देन या विमर्शकी आदत लोगोंको इतनी कम रही हो कि सर्वजनोपयोगी व्यावसायिक, औद्योगिक या आर्थिक प्रयोजनों में विना सरकारकी सहायताके पारस्परिक इत्तिफ़ाक़ क़ायम करना उनके लिए सम्भव न भी रहा हो, पर आज तो वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं है। आज तो वैचारिक विनिमय और आदान-प्रदानके साधन इतने अधिक व्यापक हो गये हैं कि उसके परिणाम स्वरूप, जब आजका आदमी, कोई भी समाजें, असेम्वलियाँ, कारपोरेशन, कांग्रेसं, अथवा कोई भी वैज्ञानिक आर्थिक, या राजनीतिक संस्थाएँ बनाना चाहता है तो यह सब वह विना किसी सरकारी सहायताके वड़ी आसानीसे कर लेता है, वल्कि उल्टे यह होता है कि ऐसे अधिकांश मामलोंमें सरकार सहायक होनेके वजाय उलटी बाधक ही होती है।

पिछली शताब्दीके अन्तके वादसे तो सरकारोंने मानव-जातिके उन्नयनके लिए होनेवाले हर प्रगतिशील आन्दोलनको केवल अनुत्साहित ही नहीं किया, वल्कि उसे हर तरह दवानेकी कोशिश की है। पीड़न, गुलामी और शारीरिक दंडकी प्रथाको

मिटानेके लिए जो आन्दोलन चलाया गया, उसे इसी प्रकार दबा दिया गया, सभाओं और अखबारोंकी स्वतन्त्रताके लिए उठनेवाले आन्दोलनोंको भी इसी तरह खत्म किया गया। इतना ही नहीं है कि जन-हितके आंदोलनोंमें सरकारें सहयोग नहीं देतीं, बल्कि मनुष्य नवीन जीवनके नये स्वरूप उपस्थित करनेको जितनी भी प्रवृत्तियाँ चलाता है, उनमें ये सरकारें जबरदस्त रुकावटें डालती हैं। मजूर और जमीनके सवालों तथा राजनीतिक और धार्मिक समस्याओंको हल करनेके लिए अगर कोई तजवीजें की जाती हैं तो सरकारी सत्ता उसे सिर्फ अनुत्साहित ही नहीं करती, बल्कि उसका खुला विरोध और दमन करती है।

"यदि सरकार और शासक-सत्ता नहीं होगी, तो राष्ट्र अपने पड़ोसियोंके द्वारा पदाक्रांत कर दिए जायेंगे।"

इस आखिरी तर्कका उत्तर देना ही अनावश्यक है; क्योंकि यह दलील स्वयम् ही अपनेको काट देती है।

हमसे कहा जाता है कि सरकार और उसकी फौजें इसलिए जरूरी हैं कि वे पड़ोसी सरकारोंसे हमारा बचाव करती हैं, ताकि वे हमपर अपना आधिपत्य न जमा लें। पर हर सरकार, हर दूसरी सरकारके बारेमें यही तो कहती है, और तभी हम यह भी जानते हैं कि हर यूरोपीय राष्ट्र स्वातन्त्र्य और बन्धुत्वके उन्हीं सिद्धान्तोंका इकरार करता है, तब फिर उसे अपने पड़ोसीसे बचाव करनेकी जरूरत ही कहाँ रह जाती है। लेकिन अगर कोई बर्बर आततायियोंसे अपना बचाव करनेकी बात कहता है, तो उसके लिए आज जितनी फौजें हैं, उसकी एक फी सदी फौज इस प्रयोजनके लिए काफी होगी। फौजोंकी तरक्की पड़ौसी राष्ट्रोंके आक्रमणके खतरेसे हमारा बचाव करनेमें केवल विफल ही नहीं होती, बलिक उल्टे वह उस आक्रमणको उत्तेजन देती है, जिसका कि प्रतिकार करनेके लिये वे खड़ी की जाती हैं।

इसलिए आजका आदमी जब उस सरकारके मूल्य और सार्थकतापर विचार करता है, जिसके नामपर उसे अपनी शांति, सलामती और जीवन कुरबान बाध्य किया जाता है, तब उसे स्पष्ट हो जाता है कि यह कुरबानी जिस

माँगी जाती है, वह आधार ही अविवेकपूर्ण है।

आजके ईसाई राष्ट्र, प्रकृति-पूजक युगके राष्ट्रोंसे ज़रा भी कम बर्बर नहीं हैं। बहुतसे मामलोंमें, और खासकर पीड़नकी दिशामें तो उनकी स्थिति और भी बदतर हो गई है। उस पहले युगमें बाहरी नृशंसता और दासत्व मनुष्यकी अन्तश्चेतनाके अनुरूप ही थे, बढ़ते हुए समयके साथ उनके भीतर-बाहरका यह सामंजस्य बढ़ता ही जाता था। मगर हमारे युगोंमें मनुष्यकी यह बहिर्गत बर्बरता और दासत्व उसकी ईसाई अन्तश्चेतनाके ठीक प्रतिकूल पड़ता है, और प्रतिवर्ष यह विरोध अधिकाधिक प्रत्यक्ष होता जारहा है।

इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होनेवाला दुःख और पीड़न अत्यन्त निरर्थक दिखाई पड़ता है। बालक-मजूरोंके पीड़नकी तरह ही इस पीड़नको छुकाया जारहा है। प्रत्येक वस्तुस्थिति नये जीवनके आगमनके लिए तैयार है, फिरभी किसी जीवनके चिन्ह दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।

ऊपरसे देखनेमें ऐसा ही लगता है कि इस स्थितिसे छुटकारा पानेका कोई उपाय ही नहीं है। सचमुच ऐसा ही होता यदि मनुष्यको और इसलिये उसकी दुनियाको किसी उच्चतर जीवन-निर्धारणकी सामर्थ्यका वरदान न मिलता, जिसमें कि एकबारगी ही मनुष्यके कठिनसे कठिन बंधन तोड़नेकी शक्ति होती है।

और यही वह ईसाई जीवन-दर्शन है जो आजसे अठारहसौ वर्ष पहले मनुष्यको उपलब्ध हुआ था।

मनुष्यके लिए आवश्यकता केवल इस बातकी है कि वह ईसाई धर्म-शिक्षाओंके अनुसार जीवनको समझे, अर्थात् मनुष्यको इस बातकी प्रतीति होनी चाहिये कि उसका जीवन—उसका अपना, कुटुम्बका, या किसी सरकारका नहीं है; बल्कि यह तो उसका है, जिसने उसे इस धरतीपर भेजा है। इसलिये मनुष्यको यह समझना चाहिये कि उसका कर्तव्य क्या है? उसका कर्तव्य है कि अपना जीवन वह अपने व्यक्तित्व, कुटुम्ब या सरकारके नियम-विधानके अनुसार न बिताये, बल्कि वह उस परम प्रभुके सनातन शासनका अनुसरण

करे, जिसने उसे जीवन-दान किया है। इसी शासनका अनुसरण करके वह मनुष्यकी किसी भी बड़ीसे बड़ी सत्तासे अपनेको इतना अधिक मुक्त पायेगा, कि वह ऐसी किसी भी बाहरी सत्ताको अपने मार्गकी बाधा माननेसे ही इनकार करने लग जायगा।

मनुष्यको केवल इतना ही निश्चय होनेकी आवश्यकता है कि उसके जीवनका उद्देश्य प्रभुके शासनको सम्पन्न करना है: इस शासनका प्रभुत्व जब मनुष्यके सारे बहिर्गत सम्बन्धोंमें व्याप जायगा, तो उसके फलस्वरूप अन्य सारे बाहरी मानवी शासनोंकी सत्ता और प्रतिबन्ध अपने आप ही निरर्थक हो जायेंगे।

जो ईसाई, प्रभु ईसा द्वारा प्रेरित, प्रत्येक मानव-आत्मामें अन्तर्भूत इस प्रेमके सनातन शासनका चिन्तवन करेगा, वह मनुष्य-रचित सारी सत्ताओंसे मुक्त हो जायगा!

एक ईसाई किसी बाहरी हिंसाका पीड़न झेल सकता है, उसकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रतासे उसे वंचित किया जा सकता है, वह अपनी वासनाओंका गुलाम हो सकता है (क्योंकि जो मनुष्य पाप करता है, वह उस पापका गुलाम होता है), पर उसे किसी जोर जबरदस्तीसे या धमकियाँ देकर उसकी अपनी अन्तर-आत्माके विरुद्ध आचरण करनेके लिये बाध्य नहीं किया जा सकता। सामाजिक जीवन-निर्धारणको माननेवाले लोगोंपर अभाव और उत्पीड़नका भारी प्रभाव पड़ता है; पर एक सच्चे ईसाईपर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता, इसीसे उसपर कोई बलात्कार नहीं किया जा सकता। अभाव और उत्पीड़न मनुष्यकी भौतिक सुख-सुविधाका नाश करते हैं जिसे प्राप्त करना समाजवादी-दर्शनका उद्देश्य है; ये अभाव और उत्पीड़न एक ईसाईके जीवनके सुख-कल्याणपर कोई असर नहीं डाल सकते। क्योंकि एक ईसाईके सुखका आधार इस अन्तश्चेतनापर है कि वह तो केवल-प्रभुकी इच्छाका अनुसरण कर रहा है। बल्कि ये बाहरी अभाव-उत्पीड़न जब एक ईसाईपर आक्रमण करते हैं तो उल्टे उन्हें झेलकर वह प्रभुकी इच्छाका अनुसरण करता हुआ अपना परम कल्याण सिद्ध कर लेता है।

इसलिये एक ईसाई जब अपने आन्तरिक ईश्वरीय शासनके प्रति आत्मार्पण

कर देता है तो वह बाहरकी किसी भी सत्ताके शासनको, जिसे वह अपने आत्मगत ईश्वरीय प्रेमके न्यायकी प्रतीतिके प्रतिकूल पाता है, माननेसे इनकार कर देता है; इसी आधारपर कोई भी प्रतिकूल सरकारी आज्ञाएँ उसके लिये अमान्य हो जाती हैं। वह किसी भी व्यक्ति-विशेषकी आज्ञा माननेको बाध्य नहीं किया जा सकता, वह किसीकी भी शासित प्रजा होना स्वीकार नहीं कर सकता। एक ईसाई यदि किसी भी सरकारका आधिपत्य स्वीकार कर लेता है और अपने इस तरहके आत्मार्पणसे एक सरकार की नींव डालता है तो वह ईसाईयतसे सीधे इन्कार करता है। क्योंकि जो व्यक्ति किसी भी मनुष्यकृत बाहरी न्याय-नियमको मानना स्वीकार कर लेता है, वह अपने इस निश्चयके द्वारा अत्यन्त निश्चयात्मक रूपसे ईसाईयतको अस्वीकार कर देता है—उस ईसायतको जिसका कि सार-तत्व यह है कि जीवनकी हर परिस्थितिमें एक ईसाई उसी प्रेमके शासणका अनुसरण करता है, जिसे वह अपने भीतर ही पाता है।...

आजकी ईसाई दुनियाकी स्थिति उसके इन क़िलों, तोपों, डिनामाइटों, बन्दूकों, टॉरपीडों, जेलखानों, फाँसीके फन्दों, गिरजाघरों, फेक्टरियों, कस्टमघरों और महलोंके बीच बड़ी राक्षसी हो उठी है। लेकिन ये क़िले, तोपें और बन्दूकें अपने-आप युद्ध नहीं कर लेतीं, ये जेलखाने अपने-आप ही अपने दरवाजोंपर ताले नहीं डाल सकते, ये फाँसीके फन्दे अपने आप ही किसीको फाँसीपर नहीं टाँग देते, ये गिरजे अपने-आप ही मनुष्यको ग़लत राहपर नहीं ले जाते, न ये कस्टमघर आप खुद ही टैक्स वसूल कर सकते हैं, और न ये महल और फैक्टरियाँ अपने-आपको स्वयम् खड़ा करके चला सकती हैं; इन सबका संचालन मनुष्यके द्वारा ही होता है। जब मनुष्य स्वयं ही समझ जायेगा कि उसे इन्हें बनानेकी ज़रूरत नहीं है, तो ये चीज़ें अपने-आप ही खत्म हो जायेंगी।

और अब तो मनुष्य इस बातको समझने भी लगा है। सब लोग आज इस बातको न भी समझे हों, पर मानव जातिके उन नेताओंने इस बातको ज़रूर समझ लिया है जिनका दुनिया अनुसरण करती है। और एक बार जो चीज़ समझ ली

गई है, उसे समझनेमें अब कोई बाधा नहीं आ सकती। और जब समझनेवाले अग्रणियोंने उस राहपर क़दम रख दिया है तो निश्चय ही जनता उनका अनुसरण कर सकती है और अनिवार्य रूपसे करेगी।

और इसीलिये यह भविष्यवाणी की गई थी : कि एक समय ऐसा आयेगा जब मनुष्य प्रभुके वचनका पालन करेंगे, युद्धके कौशल भूल जायेंगे, अपनी तलवारोंको गलाकर उससे वे हलके पाने बना डालेंगे और अपने भालोंको वे हँसियोंमें बदल देंगे। इस परिवर्तनका परिणाम यह होगा कि तमाम जेलख़ाने, क़िले, फ़ौजी बैरक़, महलात और गिरजे खाली हो जायेंगे, और ये फाँसीके फन्दे और तोपें बेकार हो जायेंगी। अब यह महज़ एक 'यूटोपिया' (ख़्वाबी दुनिया) नहीं रह गया है, बल्कि यह एक नई और निश्चित जीवन-व्यवस्था है जिसकी कि ओर मानव जाति बड़ी तेज़ीसे अग्रसर हो रही है।

लेकिन वह दुनिया कब आयेगी?

अबसे अठारहसौ वर्ष पहले ईसाने इस प्रश्नका उत्तर दिया था: वह दुनिया आयेगी मौजूदा प्रकृति-पूजक दुनियाका अन्त होनेपर—वह तब आयेगी जब मनुष्यका पीड़न अपनी चरम सीमापर पहुँच जायगा; और जब समस्त पृथ्वीपर प्रभुके स्वर्ग-साम्राज्यकी घोषणा होगी—अर्थात उस नवीन-जीवन-व्यवस्थाकी सम्भावना उद्घोषित होगी, जिसका कि आधार हिंसापर नहीं होगा।

"पर उस दिन और उस घड़ीकी बात कोई मनुष्य नहीं जानता है, नहीं; स्वर्गके देव-दूत भी नहीं जानते; केवल मेरा वह परम पिता जानता है" क्राइस्टने कहा था, "इसलिये प्रतीक्षा करो: क्योंकि तुम नहीं जानते हो कि तुम्हारा प्रभु कब आ जायगा।"

कब आवेगी वह घड़ी? ईसाने कहा था कि यह हम नहीं जान सकते। और इसीलिये हर घड़ी हमें उस दुनियाको उपलब्ध करनेके लिये तैयार रहना चाहिये।

इसके सिवाय इसका और कोई उत्तर नहीं हो सकता। प्रभुके साम्राज्यके आगमनके उस दिन और उस घड़ीको मनुष्य नहीं जान सकता है, क्योंकि उस

घड़ीका आना स्वयम् मानवों पर ही निर्भर करता है।

यह उत्तर उस दानिशमन्दके जवाबकी तरह है, जिसने एक मुसाफ़िरके यह पूछने पर कि वह अभी शहरसे कितनी दूर है, उत्तर दिया था—

"चलते जाओ!"

यदि हमें यही नहीं मालूम है कि मानवता जिस लक्ष्यकी ओर बढ़ रही है, वह कितनी दूर है, तो हम उस ओर बढ़ ही कैसे सकेंगे? यह बात तो स्वयम् मानवता पर ही निर्भर करती है कि वह यकसाँ क़दमसे उस ओर बढ़ती जाती है, या बीचहीमें रुक जाती है; वह तेज़ चालसे चलती है या शिथिल चाल से चलती है।

हम तो केवल इतना ही जानते कि धरतीपर प्रभुका साम्राज्य उतारनेके लिये हम मनुष्योंको, जो कि मानव-जातिके अंग हैं, क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये। और यह बात हम सब लोग जानते हैं; जो करना है वह यही है कि हर आदमी अपने कर्तव्यका पालन करना आरम्भ कर दे; हर मनुष्य को अपने भीतरके प्रकाशके अनुसार आचरण करते हुए जीना चाहिये; प्रत्येक मनुष्यका हृदय जिस प्रभुके साम्राज्यकी दिन-रात कामना कर रहा है, वह इसी प्रकार धरतीपर उतर सकेगा।...

टाल्स्टायका इतिहास-दर्शन *

सन् १८११ के अन्तिम भागमें, पश्चिमीय यूरपमें शक्तियोंका संचरण और केन्द्रीकरण आरम्भ हुआ; और १८१२में लाखों-करोड़ों आदमियोंकी बनी ये फ़ौजें पश्चिमसे पूर्वमें रूस की सरहदोंकी ओर बढ़ने लगीं, जहाँ कि पिछले सालकी तरह ही रूसी फ़ौजोंका जमाव हो रहा था।

२४ जूनके दिन पश्चिमीय यूरपकी फ़ौजोंने रूसी सरहदको पार किया और युद्धका आरम्भ हो गया; दूसरे शब्दोंमें कहें तो यह कि वह घटना घट गई जो मानवीय विवेक और मानवीय प्रकृतिके सर्वथा विरुद्ध है।

लाखों आदमियों ने एक-दूसरेके विरुद्ध धोखाधड़ी, विश्वासघात, डकैतियाँ, जालसाजियाँ, जाली कारनामे—लूट-फाट, अग्नि-कांड, हत्याएँ आदि ऐसे अनगिनती अपराध किये, जिनका कि मुक़ाबिला दुनियाँकी तमाम अदालतोंके शताब्दियोंके अपराधोंके संचित इतिहास नहीं कर सकते। और तबभी इस सबको उस युगके युद्ध-विधाता अपराध तक माननेको तैयार नहीं थे!

क्या चीज थी, जिसने इस असाधारण घटनाको जन्म दिया!

उसके कारण क्या थे?

---

*'वार एंड पीस' (युद्ध और शांति)—से

इतिहासकार अपने समस्त दाना (बुद्धिमान) अन्ध-विश्वासके साथ यही कहते सुने जाते हैं कि ओल्डनबर्गके ड्यूकका अपमान, 'कॉन्टिनेण्टल सिस्टम' की अवज्ञा, नेपोलियन की महत्वाकांक्षा, एलेक्ज़ेण्डरकी हठ और राजनीतिके खिलाड़ियोंकी गलतियोंमें ही इस युद्धके कारण पाये जाते हैं।

ऐसी सूरतमें युद्धको रोकनेके लिये केवल इतना ही पर्याप्त था कि मेटरनिच, रुमयान्टसाफ या टैलीरैंड थोड़ी तकलीफ़ करके बुद्धिमानीपूर्वक एक स्टेट-पेपर तैयार कर लेते, नेपोलियन एलेजेण्डरको इतना भर लिख देते "महोदय और सम्राट-बन्धु, ओल्डनवर्ग के ड्यूकको मैं उनकी रियासत लौटानेको रजामन्द हूँ।"

यह आसानीसे समझमें आता है कि उस ज़मानेके लोगोंके सामने वह बात उसी रोशनीमें पेश आती थी। यह भी समझमें आता है कि नेपोलियनने इस युद्धका कारण 'इंग्लैण्ड के षड्यंत्र होना' बताया था (सेंट हेलिनाके द्वीपमें उसने यही बात कही थी); यह भी खूब समझमें आता है कि बरतानवी पार्लमेण्टने नेपोलियनकी महत्वाकांक्षाको ही इस युद्धका कारण घोषित किया था, यह भी साफ़ है कि राजकुमार ओल्डनवर्गने अपने अपमानको ही इस युद्धका कारण माना था, और यह भी जाहिर है कि व्यापारियोंने 'कॉन्टिनेण्टल सिस्टिम' को, जो कि यूरोपीय व्यापारका सत्यानाश कर रही थी, इस युद्धके लिए ज़िम्मेवार बताया था; और युद्धके पुराने निष्णातों और सेनापतियोंके लिये इस युद्धका कारण यह था कि उन्हें करनेके लिये कुछ काम चाहिए था; उस युगके धाराशास्त्रियोंका ख़्याल था कि उनके पुख़्ता और मुक़म्मिल सिद्धान्तोंको क़ायम रखनेके लिए वह युद्ध जरूरी था; और कूट-राजनीतिज्ञोंने युद्धकी यही वजह क़रार दी थी कि १८०९ में आस्ट्रियाके साथ रूसकी जो मैत्रि-संधि हुई थी, वह सावधानीपूर्वक नेपोलियनसे पोशीदा नहीं रक्खी गई, और यह भी कि मेमोरेण्डम नं. १७८ का मज़मून कुछ बेतुका-सा हो गया था।

यह बड़ी आसानीसे समझमें आ सकता है कि ये और ऐसे ही दूसरे अनगिनत कारण (जिनकी भिन्नता मुख्तलिफ़ दृष्टिकोणों पर निर्भर करती है) उस युगमें जीनेवाले मनुष्योंके मनका समाधान कर सकते थे। पर हमारी आजकी पीढ़ी

को, जो उस ज़मानेसे बहुत दूर पड़कर एक अधिक व्यापक विस्तारकी ज़मीन पर उस घटनाके ऊँच-नीचकी जाँच-पड़ताल कर सकती है, और जो सीधे उसके स्पष्ट और भयानक कारणोंको खोज निकालना चाहती है, युद्धके ये सारे उपरोक्त कारण बहुत अपर्याप्त जान पड़ते हैं। आजके आदमीको यह क़तई समझमें नहीं आता कि लाखों ईसाईयोंने सिर्फ़ इसलिए एक दूसरे पर ज़ुल्म ढाया और एक दूसरेको हलाल किया, कि चूँकि नेपोलियन महत्वाकांक्षी था, एलेक्ज़ेण्डर हठीला था, बरतानवी राजनीति दोषपूर्ण थी और ओल्डनबर्गके ड्यूकका अपमान हो गया था। यह समझमें आ सकना नितान्त असम्भव है कि इन घटनाओंका हत्या और हिंसा से क्या सम्बन्ध है : महज़ ड्यूकका अपमान् होनेके कारण क्यों यूरपके दूसरे छोर के हज़ारों आदमियोंको स्मॉलेन्स्क और मॉस्कोकी सरकारोंके वैसे ही हज़ारों आदमियोंको लूटना और मार डालना चाहिए और उनके हाथों स्वयम् भी मारे जाना चाहिए।

हमारी आजकी पीढ़ीके सामान्य-जनोंको, जो इतिहासकार नहीं हैं, और खींचतान कर उपस्थित की गई किसी भी कार्य-कारण परम्परामें जिनकी दिलचस्पी नहीं है, और इसीलिए जो एक बेलाग और स्वस्थ नज़रसे उस घटना पर ग़ौर कर सकते हैं, उसके असंख्य कारण नज़र आते हैं। उन कारणोंकी तलाशमें, हम जितने ही गहरे उतरते हैं, वे और भी कई गुने होकर हमारे सामने आते हैं। हर जुदा-जुदा कारण, और हर कारणोंकी परम्परा अपनी एक ख़ास शक्लमें समान रूपसे ठीक मालूम होती है। और उनके फलस्वरूप घटनेवाली घटनाओंकी भयानकताके मुक़ाबले जब हम उनका अन्दाज़ा करते हैं तो वे सारे कारण समानरूपसे ही बिल्कुल मिथ्या सिद्ध हो जाते हैं। वे और भी मिथ्या इसलिए साबित हो जाते हैं कि वे सारे कारण एक-दूसरेके सहयोगी हुए बिना अपने-आपमेंसे उस दुर्घटनाको जन्म नहीं दे सकते थे।

कारण बताया गया है कि नेपोलियनने विस्चुलामें अपनी फौजें वापस खींच लेनेसे इनकार कर दिया था और ओल्डनबर्गको उसकी रियासत लौटाना भी

नामंजूर कर दिया था। हमारे आजके विचारमें इस कारणका वजन इतना ही हो सकता है कि दूसरे हमलेके वक़्त कोई भी एक फ्रेंच कारपोरेल लड़ाई पर जाना चाह भी सकता था और नहीं भी चाह सकता था । क्योंकि वह कारपोरेल अगर युद्धमें भाग लेनेसे इनकार कर देते और उसके बाद दूसरा, तीसरा और इसी सिलसिलेमें एक हजार कारपोरेल और दूसरे सिपाही भी इसी तरह इनकार कर देते तो नेपोलियनकी फौज इस क़दर घट जाती कि युद्ध होता ही नहीं।

अपनी फौजोंको विस्चुलासे परे हटा लेनेकी माँग पर अगर नेपोलियन बुरा न मान जाता, और उन फौजोंको लड़ाईका हुक्म न देता तो लड़ाई होती ही नहीं; बल्कि उसके सब उपसैनिक ही अगर लड़नेको तैयार न होते, तो युद्ध ग़ैरमुमकिन हो जाता। और अगर वरतानवी कूटनीतियाँ न होतीं और राजकुमार—ओल्डनबर्ग न होता, तब भी लड़ाई न होती; और अगर अलेग्ज़ेण्डर बुरा न मान जाते और रूसमें नादिरशाही सत्ता न होती; और अगर फ्रेंच क्रान्ति न होती और उसके बाद वहाँ नादिरशाही हुकूमत और साम्राज्य क़ायम न होता; और वे सब कारण न होते जिनसे क्रान्ति हुई, वग़ैरह-वग़ैरह । इनमेंसे किसी एक भी कारणकी चूक पड़ जाती तो युद्ध न होता। तब मानना चाहिए कि इन सारे करोड़ों-अरबों कारणोंने मिलकर ही उस युद्धको सम्भवित होने दिया।

इस सबका एक सामान्य निष्कर्ष हमारे सामने यह आता है कि इन सारी घटनाओंका कोई आत्यन्तिक रूपसे एक और अन्तिम कारण तो हो ही नहीं सकता था; और वह सबसे बड़ी दुर्घटना इसलिए हुई कि उसे होकर ही रहना था। लाखों आदमियोंको अपनी मानवीय भावनाओं और विवेकका त्याग करके पश्चिमसे पूर्वकी ओर जाना पड़ा और अपने ही भाइयोंको मारना पड़ा; यह ठीक वैसा ही हुआ जैसे कि कई शताब्दियों पहले मानवोंके झुण्ड अपने भाईयोंको मारते हुए पूर्वसे पश्चिमकी ओर झपटे थे।

जो भी प्रकट रूपमें इन सारी दुर्घटनाओंके पीछे नेपोलियन और एलेग्ज़ेण्डरकी ही आज्ञा काम करती दिखाई पड़ती है, पर नेपोलियन और एलेग्ज़ेण्डर भी इन

घटनाओंके सम्मुख उतने ही अनिच्छुक और परवश थे, जितना कि कोई भी सिपाही, रंगरूट या फौजी संगठन किसी भी लड़ाईमें भाग लेनेके मामलेमें पराधीन होता है। बात अनिवार्य रूपसे ऐसी ही थी; चूँकि नेपोलियन और एलेग्जेण्डर पर ही ये सारी घटनाएँ निर्भर करती थीं और चूँकि उनके आदेशका पालन आवश्यक था, इसीलिए दूसरे अनगिनती साधनोंका सहयोग उसमें जरूरी था, और उनमेंसे एक भी यदि चूक जाता तो वह महान् दुर्घटना घटती ही नहीं। यह अनिवार्य रूपसे जरूरी था कि वे लाखों दूसरे आदमी जिनके हाथोंमें वास्तविक शक्ति थी, वे सिपाही जो लड़े और वे आदमी जिन्होंने युद्धकी तोपोंके लिये दारू-गोला पहुँचाया–इस सारे मनुष्योंकी सहमतिके द्वाराही उन दो कमजोर मानवीय इकाईयोंकी इच्छा और आदेश का पालन सम्भव हो सका। और उन सारे आदमियोंको इस सहमतिकी सीमा तक लानेमें भी फिर कई अनगिनती जटिल और विभिन्न कारणोंने काम किया होगा।

इतिहासमें भाग्यवाद एक ऐसी अनिवार्य अन्ध-प्रक्रिया है, जिसकी कारण-मीमांसा सम्भव ही नहीं है। अपने तर्क-विवेकसे हम जितनाही इतिहासकी घटनाओं को समझनेकी कोशिश करते हैं, वे उतनीही अधिक अतर्कनीय और दुर्बोध होती जाती हैं।

हर आदमी अपने आपके लिए ही जीता है और अपने व्यक्तिगत प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिए उसे काफ़ी स्वतंत्रता भी है, उसके समूचे प्राणके भीतर यह भान भी रहता है कि किसी भी कामको किसी भी क्षण करने या न करनेके लिए वह पूर्णतया स्वतंत्र है। पर ज्योंही मनुष्य उस कामको कर डालता है, कि उस एक निश्चित अवधिके भीतर किया हुआ उसका वह काम, इतिहासमें एक अमिट तत्व बन जाता है। इस प्रकार इतिहासका अंग बन जानेके बाद मनुष्यका वह काम निरी सनक नहीं रह जाता, बल्कि एक पूर्वनिश्चित योजनामें वह अपना सार्थक स्थान बना लेता है।

प्रत्येक मनुष्यके जीवनके दो पहलू होते हैं, एक पहलू उसका वह व्यक्तिगत जीवन है, जो जितने ही अंशोंमें वह परोक्ष या सूक्ष्म है उतने ही अंशोंमें वह स्वतंत्र

होता है; दूसरे पहलूपर जीवन एक तत्व है, ठीक वैसेही जैसे मधु-मक्खियोंके छत्तेमें की एक मक्खी, यही वह स्थल है जहाँ मनुष्य अपनेपर लदे हुए बाह्य नियमोंकी अवज्ञा नहीं कर सकता।

मनुष्य जानबूझ कर तो अपनेही लिए जीता है; पर ऐतिहासिक और सामाजिक प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिए वह एक अचेतन साधन बनकर रहता है। एक बार जो कार्य सम्पन्न हो जाता है, वह क़ायम हो जाता है, और जब एक आदमीका कार्य दूसरे लाखों मनुष्योंके कार्योंके साथ तदाकार हो जाता है तो उसमें एक ऐतिहासिक सार्थकता उत्पन्न हो जाती है। सामाजिक नसैनीपर एक मनुष्य जितना ही अधिक ऊँचाईपर खड़ा होता है, उतना ही अन्य मनुष्योंके साथ उसका अधिक सम्बन्ध होता है, और उसी प्रमाणमें वह अन्य लोगों पर अधिक प्रभावभी डाल सकता है। और तब उसके कार्यकी पूर्व-निश्चित और अनिवार्य आवश्यकता और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है।

"राजाका दिल प्रभुके हाथमें है"

राजा इतिहासका गुलाम है।

इतिहास मानवजातिके सार्वभौम अवचेतन-जीवन की एक पुंजीभूत परम्परा है। वह इतिहास अपने साध्यको सम्पन्न करनेके लिए प्रतिक्षण, राजाओंके जीवनोंको अपना साधन बनाकर उनसे लाभ उठाता है।

नेपोलियनको १८१२ से पहले कभी इतने स्पष्ट रूपसे यह बात प्रतीत नहीं हुई थी कि यह उसकी इच्छापर निर्भर करता है कि वह इतने मनुष्योंका रक्त-पात करे या न करे,—एलेग्झेण्डरने भी अपने आख़िरी पत्रमें यही बात लिखी थी। बावजूद इस घटनाके यथार्थ रूपसे यदि देखा जाय तो इतिहास और जगतके साध्यको सम्पन्न करनेके लिए नेपोलियन निसर्गके अनिवार्य नियमोंके प्रति भी कभी इतना नहीं झुका था, जितना इस बार झुका है, भले ही फिर उसे यह महसूस होता रहा हो कि वह अपनी ही इच्छा के अनुसार बरत रहा है।

पश्चिमके आदमी पूर्वकी ओर एक दूसरेको मारनेके लिए ही बढ़े थे। घट-

नाओंकी तदाकारताके नियमके अनुसार हजारों छोटे-मोटे कारणोंने अपने-आपको एक ही अन्तिम कारणके बुर्केमें छुपा दिया। और इस प्रकार इस एक घटनाके साथ तदाकार होकर उन कारणोंने इस युद्धकी कैफ़ियत देदी। कॉन्टिनेण्टल सिस्टिमकी अवज्ञाके कारण उत्पन्न होनेवाला असन्तोष, ओल्डनवर्गके ड्यूकका अपमान, प्रशियाका वह हमला जो नेपोलियनके विचारमें महज फौजी शांति क़ायम करनेके लिए किया गया था; फ्रेंच सम्राटकी युद्ध-प्रियता और उसमें उनकी जनताकी युद्ध-प्रियताका सहयोग, युद्धके वृहत्तर आयोजनका आकर्षण, उन तैयारियोंके खर्चे और उन खर्चोंकी पूर्तिके मावजे वसूल करनेकी आवश्यकता, ड्रेसडनमें दिया जानेवाला उन्मादक सम्मान, और वे राजनीतिक समझौतेकी कोशिशें जो उस जमानेके लोगोंकी रायमें शांति-स्थापनाका ही एक ईमानदार प्रयत्न था पर जिसके कारण दोनों पक्षोंका अभिमान और अधिक घायल हुआ, ये सारे कारण और ऐसे ही और लक्ष-लक्ष कारण उस महान घटनाको एक विस्तृत कारण-परम्परा प्रदान करते हुए अन्ततः उसी एक घटनाके साथ तदाकार हो जाते हैं।

एक सेव जब पक कर गिर जाता है तो किस कारणसे गिर जाता है। भूमिके ध्रुवाकर्षणके कारण वह गिरा है या उसका डण्ठल गल गया था इसलिये गिरा है! या फिर सूरजने चूँकि उसके डंठलको सुखा दिया इसलिये यह गिरा है! या फिर इसलिये कि वह भारी है? या कि फिर हवाके थपेड़ेसे वह गिरा है? या फिर इसलिये गिरा है कि उस झाड़के नीचे खड़ा वह बालक भूखा है और उसे चाहता है, इसलिये गिरा है।

ऐसा कोई भी एक निश्चित कारण उसमें नहीं है। यह सारी चीज़ उन सारी परिस्थितियोंका परिणाम है जिनके कि अनुसार प्रत्येक टोस, प्रणालिगत, जटिल घटना घटित होती है और वनस्पति-वैज्ञानिकका यह तर्क कि सेव वानस्पतिक रेशोंके पृथक्करणके प्रभावसे गिरा है, उतना ही सच है, जितना कि उस झाड़तले खड़े लड़केका यह कहना कि उसकी प्रार्थनाके फलस्वरूप उसके खानेके लिए सेव गिरा है।

वह आदमी समान रूपसे सही या गलत है जो यह कहता है कि नेपोलियन मास्को इसीलिए गया चूँकि वह जाना चाहता था, और वह इसीलिये नष्ट हुआ।— चूँकि एलेक्जेण्डर उसे नष्ट हुआ देखना चाहता था। ठीक वैसे ही एक आदमीकी यह बात भी समान रूपसे सही या गलत है, जो कहता है कि लाखों मनके वजनके एक पहाड़को जब खोदा गया, तो वह आखिरी मजदूरकी आखिरी चोटसे ही ढह गया। इतिहासकी घटनावलीमें, ये तथाकथित महापुरुष केवल वे सूत्र होते हैं जो एक घटना-विशेषको नामांकित करते हैं, और घटनाके साथ उनका सम्बन्ध मात्र उतना ही होता है जितना कि एक पिरोनेवाले सूत्रका हो सकता है।

उनके सारे कार्य-कलाप, जो प्रकट में उनकी स्वेच्छाके परिणाम नजर आते हैं, अपने ऐतिहासिक मानेमें, उनकी इच्छा-अनिच्छाके परेकी बात होती है। उन सारे कार्यकलापोंका सम्बन्ध तो इतिहासकी एक अखण्ड साँकलके साथ होता है, और इसीलिए वे सब सनातनकालसे पूर्वायोजित ही होते हैं।

जिस प्रकार सूर्य और द्रव्यका प्रत्येक परमाणु अपने-आपमें एक सम्पूर्ण सत्ता है, और साथ ही मानवी पहोंचके बाहरकी महासत्तामें वह एक निरा परमाणु है; ठीक उसी प्रकार एक व्यक्तिके भीतर अपने स्वयंके उद्देश्य-प्रयोजन होते हैं, पर साथ ही, मनुष्यकी सीधी पहुँचके बाहरके एक सार्वभौम प्रयोजन का वह साधन मात्र होता है? फूलपर भिनभिनाने-वाली एक मक्खी किसी बालकको डंक मार देती है और वह बालक मधुमक्खियोंसे डरने लग जाता है, और वह यही कहता फिरता है कि मधुमक्खियोंका उद्देश्य ही लोगोंको काटना है।

कवि, फूलके अन्तस्तल पर बैठकर रस पीनेवाली मधुमक्खीका गुण-गान करता हुआ कहता है कि मधुमक्खीका उद्देश्य अपने भीतर फूलोंका मधु-संचय करना है।

मधुमक्खियाँ पालनेवाला जब देखता है कि वे मधुमक्खियाँ फूलोंका पराग एकत्रित करके उसे छत्तेमें लाकर भरती हैं, तो वह कहता है कि मधुमक्खियों का उद्देश्य शहदका उत्पादन करना है।

दूसरा मधुमक्खीपालक जो और भी गौरसे मक्खियोंके झुण्ड का अध्ययन

करता है, कहता है कि मधुमक्खियाँ अपने छोटे बच्चोंका पालन करने तथा अपनी रानीका उपयोग करनेके लिये मधुसंचय करती हैं, और इस तरह मधुमक्खीका उद्देश्य अपनी जाति-परंपराको बढ़ाना ही है।

एक-वनस्पति वैज्ञानिक देखता है कि मधुमक्खी जब 'डीयोशस' के फूलकी धूलि लेकर उड़ती है तो दूसरे फूलकी पंखुड़ियोंपर बैठती है और उसे अधिक उपजाऊ बना देती है, तब वह कह देता है कि मधुमक्खियोंके जीवन का यही उद्देश्य है।

दूसरा कोई वनस्पति-वेत्ता जब पौधोंके प्रादेशिक परिवर्तन को देखता है और पाता है कि मधुमक्खियाँ पौधोंके इस परिवर्तनमें मदद करती हैं, तो वह इसी बातको मधु-मक्खीके जीवनका प्रयोजन घोषित कर देता है।

पर मनुष्यकी बुद्धि द्वारा प्रकाशित किये हुए इन सारे उद्देश्योंमेंसे किसी एक भी उद्देश्य में मधु-मक्खीके जीवनका चरम-प्रयोजन सम्पूर्णरूपसे समाविष्ट नहीं है।

इन उद्देश्योंको प्रकाशित करनेकी खोजमें मानवीय बुद्धि जितनी ही आगे बढ़ती जाती है, उतना ही यह अधिक स्पष्ट होता जाता है कि चरम-प्रयोजन मनुष्यकी पहुँचके बाहर है।

मनुष्य केवल मधुमक्खीके जीवन और और अन्य जीवनोंके बीचके सापेक्ष सम्बन्धोंका पर्यवेक्षण कर सकता है। ऐतिहासिक व्यक्तित्व और राष्ट्रोंके उद्देश्यों के सम्बन्धमें भी यह बात सच मानी जानी चाहिये।

टालस्टायकी नैतिक-विचारणाका कल्पक-स्वरूप

[लघु कथायें]

निकोलस बिग्स्टिक : (निकोलाइ पाल्किन)

उसने एक पिच्चानवे बरसके बूढ़े सिपाहीके घरमें रात बिताई । अलेक्ज़ेंडर प्रथम और निकोलसके यहाँ वह नौकरीमें रह चुका था ।

"क्यों बाबा क्या तुम मरना चाहते हो ?"

"मरना ? कितना अच्छा हो, अगर मर सकूँ ? कभी मैं मौतसे डरा करता था, पर अब तो भगवानसे मेरी एक ही विनती है कि वह मुझे अपने दोषोंको क़बूल करनेका मौका दे दे और मुझे अपना सन्देश सुना दे । मैंने बहुत पाप किये हैं ।"

"भला वे पाप कौनसे रहे होंगे ?"

"यह भी कोई पूछनेकी बात है ? क्या तुम्हें मालूम नहीं है, जब मैं निकोलसके जमानेमें नौकरीपर था ? तब जो कुछ हुआ, वह और था ही क्या ? उस बातको सोचता हूँ, तो थर्रा उठता हूँ । और अलेक्ज़ेंडरके जमानेको भी भूला नहीं हूँ । सिपाही लोग अलेक्ज़ेंडरकी तारीफ़ किया करते थे । लोग कहा करते थे, कि वह दयालु था ।"

मुझे अलेक्जेण्डरके आखिरी दिनोंका ख़्याल आया, जब बीस फी-सदी आदमी कोड़ोंकी मारसे ही मार डाले जाते थे । जब अलेक्जेण्डरको निकोलसके मुक़ाबले दयालु कहा जाता था, तो निकोलस भी जरूर दयालु रहा होगा ।

"और फिर मैंने निकोलसके वक्तोंमें भी नौकरीकी" उस बूढ़े आदमीने कहा। उसने अपने अन्दर कुछ स्फूर्ति महसूस की और बातको आगे बढ़ाया।

"भला वे भी क्या दिन थे? उन दिनोंमें पचास कोड़ोंसे पिंड नहीं छूट पाता था। डेढ़सौ, दो-सौ, तीन-सौ कोड़े मारे जाते थे—यहाँ तक कि कोड़ोंकी मारसे आदमी की जान ले ली जाती थी!"

बेशक एक दहशत और नफ़रतके साथ वह इन बातोंका ज़िक्र कर रहा था, मगर अपने उस भूतकालके कारनामोंपर उसे अभिमान भी था: "कभी-कभी वे लोग लकड़ीका इस्तेमाल भी करते थे। रिसालेके एक-दो आदमियोंकी जान लिये बिना, मुश्किलसे ही उनका एकाध हफ़्ता गुजरता था। आज तो कोई जानता भी नहीं है, कि लकड़ी कहते किसे हैं। उन दिनोंमें तो लोगोंकी जबानसे 'लकड़ी' का नाम उतरता ही नहीं था—'लकड़ी लकड़ी!'—

"हम सिपाहियोंने तो निकोलसको 'लट्ठ' का खिताब ही दे दिया था। उसका नाम भले ही निकोलस पावलोविच रहा हो—मगर लोग तो उसे 'निकोलस-लट्ठ' ही कहकर पुकारते थे। वही उसका उपनाम हो गया था।" बुड्ढा कहता ही जा रहा था: "उन दिनोंकी बात जब सोचता हूँ—जिन दिनों में खुद ज़िन्दा रह कर आज जबकि मरनेके किनारे आ पहुँचा हूँ। और दिलके लिये उस वक़्तका ख्याल ही बहुत भारी पड़ जाता है—

"एक आदमी कई-कई तरहके पाप अपनी आत्मापर झेलता था! फर्माबर्दारी का सवाल जो था। एक सिपाहीके हाथों अगर पचास लाठियोंकी मार किसीको पड़ती थी, तो उस आदमीसे फिर उस सिपाहीको दोसौ लाठीकी चोटें दिलवाई जाती थीं। दूसरेको मारकर, खुदकी खाई हुई चोटोंके जखम तो अच्छे नहीं हो जाते। भला कैसा पापका काम था!

"हवालदार लोग अपने मातहत सिपाहियोंको पीट-पीटकर ख़त्म ही कर देते थे। बन्दूक़के कुन्देसे या फिर अपनी मुक्कीसे, छाती या सिरके एक खास मुकामपर वह लगातार चोटें मारता ही जाता और इस तरह आदमी मर जाया करता। और

उसकी कोई पूछताछ करनेवाला भी नहीं था। आदमी चोटोंकी मारसे मरता था और अफ़सर लिख देता 'ईश्वरकी मर्ज़ीसे मर गया' और बात ख़त्म हो जाती। पर क्या तब ये बातें मेरी समझमें आती थीं? हर आदमी अपनी ही बात सोचता है। और अब तवेपर पड़ा हुआ जैसे छटपटाया करता हूँ; रात-रातभर नींद नहीं आती। ख़्यालका ताँता टूटता ही नहीं है। वे सारी बातें बहुत साफ़ होकर सामने आती हैं। वह आदमी बहुत भाग्यवान है, जिसे प्रभु ईसाके हुक्मनामेके मुताबिक़, अपने दोषोंको क़बूल करके, माफ़ी माँगनेका मौक़ा मिलता है। नहीं तो फिर दिलकी दहशत खाये ही जाती है। जब सोचता हूँ कि मैंने खुद कैसे-कैसे जुल्म झेले हैं और दूसरोंपर मैंने कैसे-कैसे जुल्म ढाये हैं, तो लगता है कि अब किसी नरककी जरूरत नहीं रह गई है। वह सब तो नरक और शैतानसे भी बदतर था।"

मैंने ग़ौर करके सोचा इस मरते हुए बूढ़े आदमीको इसके अकेलेपनमें जाने कैसी-कैसी भयानक यादें सताती होंगी, और मेरा हृदय बहुत सन्तप्त हो उठा। मुझे ख़्याल आया कि डण्डे मारनेके अलावा, लोगोंको क़तारमें खड़े करके कोड़े मारना, गोलीसे उड़ा देना, क़त्ल कर देना और लड़ाईके दरमियान शहरोंको उजाड़ देना वग़ैरह, न जाने कितने अनाचारोंमें इस बुड्ढेको हिस्सा लेना पड़ा होगा। मैंने उससे सब बातें ब्यौरेवार पूछीं और यह भी मालूम किया कि कतारमें खड़े रखकर कोड़ोंकी पिटाई कैसे होती थी।

उसने विस्तारपूर्वक उन सारी भयानक प्रथाओंका ज़िक्र किया। उसने यह भी बताया कि कैसे एक आदमी को बन्दूक़ोंके साथ बाँधकर, सिपाहियोंकी दो क़तारोंसे बनी गलीके बीचसे गुज़ारा जाता था, वे सिपाही उस आदमीपर बिजलीके कोड़ोंकी वर्षा करते थे और उन सिपाहियोंके पीछे चलनेवाले अफ़सर जोर-ज़ोरसे गरजते जाते थे "ज़ोरसे मारो! और ज़ोरसे मारो!"

वह बूढ़ा भी इस बातका ज़िक्र करते समय वैसे हुक्म देनेके स्वरमें गरज उठा, और देखकर कोई भी कह सकता था कि पुराने दिनोंकी उस बातको याद करके फिरसे उसका अभिनय करते समय उसे एक ख़ास तरहका संतोष हो रहा था।

ज़रा भी अफ़सोस जाहिर किये बिना वह बूढ़ा सारी बातें तफ़सीलवार सुना गया, गोया कि वह समझा रहा हो कि कैसे साण्डको हलाल करके उसका गोश्त पका लिया जाता है।

लेकिन जब इन सारी स्मृतियोंके बीच मैंने उसके भीतर किंचित् पश्चात्तापका भाव जगाना चाहा तो वह बड़ी उलझनमें पड़ गया और भयभीत हो रहा।

"ऐसी तो कोई बात नहीं है" उसने कहा, "भला ऐसा कैसे कहा जा सकता है ? जो कुछ हो रहा था बदस्तूर हो रहा था। उसमें क्या कुछ मेरा क़सूर था ? वह तो सब क़ानूनी अमल था।"

फिर लड़ाईकी भयानकताओंका ज़िक्र आया। उसने भी कई लड़ाइयाँ लड़ी थीं। ख़ासकर टर्की और पोलैण्डके बीचकी उन हज़ारों लड़ाइयोंको उसने देखा था। पर इन सारी बातोंका ज़िक्र करते समय वह बहुत ही शान्त था और किंचित् मात्र भी पश्चातापका भाव उसमें नहीं था।

इस बूढ़ेको कैसा लगेगा अगर मौतकी दहेलीपर इसे यह बात स्पष्ट समझमें आजाय, जो कि उसे पहले ही आ जानी चाहिये थी, कि— इस अन्तिम क्षणमें, मौतकी इस संध्यामें उसकी अन्तरात्मा और प्रभुके बीच दूसरा कोई दखल देनेवाला नहीं है, और जब उसे लोगोंपर जुलम ढाने और उन्हें मार डालनेका हुक्म मिला करता था, तब भी उसके और प्रभुके बीच कोई तीसरा दख़लगीर नहीं था ? इस आदमीको कैसा लगे, अगर यह समझ जाये कि मनुष्योंके साथ उसने जो पापाचार किये हैं वे मिट नहीं सकते: भले ही आज यह बात उसके क़ाबूकी है कि अपने न चाहनेपर आज वह ऐसा नहीं भी कर सकता है। काश वह जान पाता कि एक सनातन शासन भी है, और अवश्य ही वह उसे जानता होगा—वह जाननेको वह बाध्य है: और जिसे वह क़ानूनका नाम दे रहा था वह तो एक निर्लज्ज और शैतानी धोखा भर था जिसके कि आगे उसे हर्गिज़ नहीं झुकना चाहिये था ! और सचमुच यह ख़्याल ही बड़ा भयानक लगता है कि तवेरर पड़े हुए आदमीकी तरह छटपटाता हुआ जब वह अपने एकान्तकी उन निद्राहीन रातोंमें उन पुरानी बातोंकी

तस्वीरें दिमागमें लाता होगा तो उसपर क्या गुजरती होगी। और अगर वह यह समझ पाये कि भला और बुरा करना, दोनोंही मनुष्यके अपने क़ाबूकी बात है, और तब भी उसके हाथों बुरा ही हुआ है, तो उसकी निराशाकी सीमा नहीं होगी। और आज जब वह अच्छे और बुरेका भेद समझनेकी स्थितिमें है, तब पश्चात्तापकी पीड़ा झेलनेके सिवाय और कुछ उसके बसका नहीं है। सचमुच उसकी आत्म-यातना बड़ी भयानक होगी।

लेकिन क्यों हम उसे संताप देनेकी बात सोचें? एक मरते हुए बूढ़े आदमीकी अन्तरात्माको क्यों ऐसे निपीड़नमें डालें? इससे क्या यही भली बात नहीं, कि हम उसे तसल्ली दें? मुद्दतों पहले जो बातें गुजर चुकी थीं उनकी याद दिलाकर क्यों लोगोंको क्षुब्ध किया जाये?

गुजर चुकी? क्या गुजर चुका? क्या कोई भी चीज़ तब तक हमारे भीतरसे दूर हो सकती है, जब तक कि हमने उसे ख़त्म करनेकी कोई चेष्टा ही न की हो, और जब तक कि हम उस चीजको उसके सही नामसे पुकारनेमें भी हिचकिचाते हों?

नास्तिकोंका जलाया जाना और वैधानिक तहेकीक़ातके नामपर उनपर होनेवाले अत्याचारोंकी बर्बरता और नादानी हमारे सामने खूब साफ़ है। एक बच्चा भी उन चीज़ोंकी निरर्थकताको समझ सकता है। मगर उस जमानेके लोगोंका ध्यान इस बातपर नहीं था। उस युगके बुद्धिमानों और विद्वानों तक की यह मान्यता थी कि पीड़न और दण्ड मानव-समाजका एक आवश्यक अंग है, वह एक अनिवार्य बुराई है। गुलामी और मार-पीटके बारेमें भी उन लोगोंका यही ख़्याल था। वह वक़्त गुज़र चुका है, और उन लोगोंके दिमाग़ोंकी कल्पना करना भी आज हमारे लिए एक मुश्किल काम है, जिनमें ऐसी भयानक भूलें भी सम्भवित हो सकती थीं। मगर सभी जमानेमें यही तो हुआ है, और शायद वही हमारे जमानेमें भी हो रहा होगा, और हम भी ठीक उसी तरह अपने दुष्कृत्योंके प्रति अन्धे होंगे।

कहाँ है हमारा अत्याचार, हमारी गुलामी, हमारा डंडा? हमें लगता है कि

वह सब अब नहीं रहा है, कभी वह था और अब अतीत हो चुका है। मगर यह तो सिर्फ़ हमारी एक भ्रांति है, क्योंकि हम भूतकालको समझना ही नहीं चाहते, और जानबूझकर उस ओरसे आँखें फेर लेते हैं ताकि उसे न देख पायें।

पर यदि हम एक वेधक दृष्टिसे अपने भूतकालके भीतर देखें, तो हमारी वर्तमान स्थिति और उसके कारण हमारे सामने स्पष्ट हो जायेंगे। जलाने, सतानेकी क्रियाओंको, फाँसी-सूलीके तख़्तोंको तथा फ़ौजी संगठनको अगर हम सही नामोंसे पुकार सकें तो जेलखानों, अपराध-घरों, विश्वव्यापी पैमानेपर होनेवाले फौजी संगठनों, सरकारी पैरोकारों और पुलिसवालोंके लिए भी सही-सही शब्द मिल जायेंगे। जब यह कहना हम भूल जायेंगे कि पिछले दिनोंको याद करनेसे क्या फ़ायदा है तो हम यह स्पष्ट देख और समझ सकेंगे कि आज क्या हो रहा है।

अगर हम यह समझ लेंगे कि मनुष्यका सर उतरवाकर या उसकी शरीर-संधियाँ तुड़वाकर उससे सत्य निकलवानेकी कोशिश महज एक नादानी और बर्बरता थी, तो हमारी समझमें यह भी आ जायगा कि एकान्त-निर्वासन और मौतकी सजाएँ देकर या फिर पेशेवर वकीलों और सरकारी पैरोकारोंके मार्फ़त मनुष्यकी सचाईकी जाँच करनेका तरीक़ा भी, उससे अगर ज्यादा नहीं तो कुछ कम नादानी और बर्बरताकी बात नहीं है।

अगर हम यह समझ लेते हैं कि गलत राहपर भटक जानेवाले एक आदमीको मार डालना महज हमारा अज्ञान और क्रूरता है; तो हमारी समझमें यह भी आजायगा कि किसी एकान्त निर्वासन के क़ैदख़ानेमें उसका संपूर्ण नाश करनेके लिये उसे छोड़ देना उससे भी ज्यादा नादानीकी बात है। अगर हम यह समझ लेंगे कि किसानोंको जबरदस्ती फौजी नौकरियोंमें घेर लेना और चौपायोंके झुण्डकी तरह उन्हें जला देना एक क्रूर और अज्ञानपूर्ण कर्म है, तो हमारी समझमें यह भी आजायगा कि हर इक्कीस वर्षकी उम्रके आदमीको फ़ौजमें भर्ती होनेके लिये बाध्य करना भी उतना ही अज्ञानपूर्ण काम है। अगर हमें इस बातका अन्दाज़ हो जावे कि पुराने ज़मानेकी बॉडी-गार्डें कैसी नृशंस और जाहिल हुआ करती थीं तो हमें और

भी साफ़ तौरसे समझमें आजायगा कि आजकी गार्डें और पेट्रोलें कितनी जालिम और जाहिल होती हैं।

जब हम अपने भूतकालकी ओरसे आँखें मीचना बंद करके यह कहनेसे बाज आजायेंगे—कि 'पुराने दिनोंका ख्याल करनेसे क्या फ़ायदा है?' तो हम देखेंगे कि हमारे अपने युगकी भी अपनी विभीषिकाएँ हैं—अन्तर सिर्फ इतना है कि उन्होंने रूप बदल लिया है।

हम कहते हैं, वह सब अब खत्म हो गया है, अब वैसे सितम नहीं गुजारे जाते, सर्व-सत्ताधीश कई प्रेमियोंवाली दुराचारिणी कैथराइनें अब नहीं रहीं, गुलामी नहीं रही, और न मौतके घाट उतार देनेवाली पिटाई ही रही। मगर यह सब हमें सिर्फ ऊपर-ऊपरसे ऐसा नजर आता है। बदबूसे फटते हुये छोटे-छोटे कमरोंमें और जेलखानोंमें तीन लाख सिपाही और कैदी एक ठंडी शारीरिक और आत्मिक मौतसे मर रहे हैं। उनकी स्त्रियाँ और बच्चे भूखों मरते छोड़ दिये गये हैं और ये सारे आदमी भयानक तहखानों, जेलखानों और निर्वासन-द्वीपोंमें पड़े हुए हैं। उन पर चौकी-पहरा देने वाले गार्ड ही इन गुलामोंके सर्व-सत्ताधीश मालिक हैं, और वे ही उन लोगों की उस नृशंस परवशतासे मन चाहा लाभ उठाते हैं।

'खतरनाक विचारों वाले' दस हजार आदमियोंको निर्वासित कर दिया गया है, और इसके फलस्वरूप उन निर्वासितों ने रूसके अन्तिम छोर तक अपने विचारों को फैला दिया है; वे झक्की हो जाते हैं और फाँसी का फन्दा खाकर मर जाते हैं। हजारों आदमी क़िलोंमें गिरफ्तार हैं, और उन्हें या तो जेलोंके निरीक्षक चुप-चाप मार डालते हैं या फिर वे अपने एकान्त वन्दीगृह में पागल हो जाते हैं। लाखों आदमियों के शरीर और आत्माएँ उद्योगपतियों की गुलामी में स्वाहा हो जाते हैं। और हर अगले शिशिर काल के बीतने पर सैंकड़ों-हजारों आदमी अपने कुटुम्बियों और अपनी जवान पत्नियोंको छोड़कर जान लेनेकी कला सीखते हैं, और व्यवस्थित रूप से बर्बाद किये जाते हैं।

यह देखने-समझनेके लिए किसी खास गहरी नजरकी जरूरत नहीं है कि

हमारा आजका दिन भी ठीक उसी भूतकालकी तरह है। हमारा युग भी वैसी ही उत्पीड़नाओं और दुष्टताओंसे भरपूर है, और एक दिन हमारी आयन्दा पीढ़ीको हमारे इन सारे कारनामोंकी नादानी और हैवानियत ठीक इसी तरह हैरत में डालेगी। बीमारी वही पुरानी है, सिर्फ वह उन लोगोंके लिए बीमारी नहीं है, जो इससे लाभ उठाते हैं।

सौ बार, हजार बार वे लाभ उठायें। भले ही वे ऊँचे-ऊँचे टॉवर बाँधे, थियेटर बाँधे, नाचघरों में नाचे और लोगों का खून चूसें, भले ही उनका वह प्रचण्ड डण्डा लोगोंको मार डाले, पॉबीडॉनेटसीव और ऑरमेवस्की भले ही सैकड़ों आदमियों को क़िले के भीतर गुप्त रूप से गलाघोंट कर मार डालें, यह सब करनेकी इजाजत उन्हें है, पर उन्हें लोगोंकी नैतिकता का सत्यानाश मत करने दो, धोखा देकर बलात्कार-पूर्वक लोगोंको कुछ भी करने के लिए मजबूर मत करने दो, जैसा कि हमारे इस बूढ़े सिपाहीने किया है।

इस सारे भयानक रोग की जड़ इस मिथ्या आडम्बर में है कि अपने पड़ौसी को प्यार करनेके सनातन नियमसे भी 'बड़ा और पवित्र कोई क़ानून' इस धरती पर हो सकता है। इस पापकी जड़ उस धोखे में है, जो मनुष्यसे इस बात को पोशीदा रखता है, कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्योंकी माँगोंको पूरा करने के लिए कुछ भी कर सकता है। पर मनुष्य होकर जो एक चीज उसे हर्गिज दूसरे के कहने से नहीं करना चाहिये, वह यह है: उसे प्रभु की आज्ञा भंग नहीं करनी चाहिये—और अपने दूसरे मानव-बन्धुओंको सताना और मारना नहीं चाहिये।

आज से अठारहसौ वर्ष पहले फैरिसियोंने सवाल उठाया था—क्या उन्हें सीजर को टैक्स देना चाहिये? और उन्हें इन शब्दों में उत्तर मिला था—"जो सीजरका है वह सीजरको दे दो, और जो प्रभुका है वह प्रभुको दे दो।"

यदि मनुष्यों में किंचित्-मात्र भी धर्म शेष है, यदि प्रभुके प्रति वे अपना रंचमात्र भी कोई कर्तव्य समझते हैं, तो सबसे पहले वे अपना कर्तव्य प्रभुकी उस वाणी के प्रति पालन करें, जो उसने शब्दों में नहीं कही है, बल्कि जिसे उसने

मनुष्य के हृदय पर अमिट अक्षरों में लिख दिया है। उसने कहा है 'किसी को भी जानसे न मारो; औरोंसे तुम अपने प्रति जिस व्यवहार की इच्छा रखते हो, वही व्यवहार तुम औरों के प्रति भी करो, अपने पड़ौसीको अपनी ही तरह प्यार करो।"

यदि मनुष्यको प्रभु में विश्वास है, तो उसके प्रति अपने प्रथम कर्तव्य को वह नहीं भूल सकता है–कि वह किसी को पीड़ित नहीं करेगा, किसी की जान नहीं लेगा। ये शब्द कि 'सीज़र का सीज़र को दे दो, और प्रभु का प्रभु को दे दो, उसे बहुत स्पष्ट और निश्चित रूप से समझ में आजायेंगे। 'फिर चाहे सामने सीजर हो या और कोई हो–उसके प्रति तुम्हें कुछ भी करनेकी छुट्टी है'। एक श्रद्धालु-जन कहेगा, 'सिर्फ वही तुम्हें नहीं करना है, जो प्रभुकी आज्ञाके विरुद्ध है।'

यदि सम्राट को मेरे पैसे की जरूरत है वे लेलें; मेरा मकान, मेरा काम, वे लेलें; मेरी पत्नी, मेरे बच्चे, मेरा प्राण भी चाहें तो वे लेलें, यह सब कुछ प्रभु का नहीं है। पर अगर सम्राट चाहें कि मुझे अपना डण्डा उठा कर अपने पड़ोसी की पीठ पर मार देना चाहिए, तो वह प्रभु की चीज है। जीवन में जो आचरण मैं करता हूँ, उसके लिये मुझे प्रभु के सामने हिसाब देना होगा, और प्रभुने जो कुछ करनेका निषेध कर दिया है,वह मैं सम्राट के लिये भी नहीं करूँगा। मैं एक आदमीको बाँध नहीं सकता, उसे जेलखाने में नहीं डाल सकता,उसका सिर नहीं उड़ा सकता, उसकी जान नहीं ले सकता; वही मेरा सच्चा जीवन है, और मेरा जीवन प्रभु का धन है, और वह मैं प्रभु को छोड़ कर और किसी को नहीं दे सकता।

'जो प्रभु का है, वह प्रभुको दे दो' आज हमारे लिये प्रभुको देने की वे चीजें हैं–मोमबत्तियाँ और प्रार्थनाएँ, और वह हर चीज जिसकी किसी को भी जरूरत नहीं है-और प्रभुको तो जिसकी सबसे कम जरूरत है। और बाक़ी जो रह जाता है, हमारा समूचा जीवन, जो हमारी आत्माका मंदिर, और जो प्रभु की सम्पत्ति है, वह सब हमने सीजर को दे दिया है, उसी सीजर को, जिसे यहूदी लोग दूर-दूर से अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे।

क्या यह सब भयानक नहीं है? मनुष्यो, जरा अपनी स्थिति पर विचार करो?"

तीन दृष्टान्त-कथाएँ

पहला दृष्टान्त

एक सुन्दर घांसका मैदान था; उसमें घांस उगी हुई थी। उस मैदानके मालिकोंने घांसको कटवा दिया, पर घांस तो और भी अधिक बढ़ने लगी। एक दिन एक चतुर और भला किसान उन मालिकोंके पास आया और उन्हें कुछ अच्छी सलाह दी। उसने यह भी बताया कि घांसको काटना नहीं चाहिए, क्योंकि ऐसा करनेसे वह और फैलती ही है; उसे तो जड़से ही उखाड़ देना चाहिये।

बहुतसी सलाहें उस चतुर किसानने इन मालिकोंको दी थी, उसीमें एक यह घांस न काटकर उसे जड़से उखाड़ने की बात भी थी। कौन जाने या तो उन बहुत-सी सलाहोंमें एक यह भी होनेसे, मालिकोंने इसकी अवज्ञा कर दी, या फिर उन्होंने उस पर अमल करना ही उचित न समझा हो। बात जो भी रही हो—काटनेके बजाय घास को जड़से उखाड़नेकी बातको उन मालिकोंने टाल दिया। वे कुछ इस तरह बरतने लगे जैसे वह बात उन्होंने कभी सुनी ही न हो, और हमेशाकी तरह घास काटते रहे और इस तरह उसके फैलनेमें और भी मदद करते रहे। बादके बरसोंमें कई लोग आये-गये जिन्होंने मालिकोंको उस बुद्धिमान किसानकी सलाह याद दिलाई, मगर वे अपनी करनीसे बाज नहीं आये। पहले ही की तरह वे अपना काम करते गये। इस तरह हर बार घांसके उग आनेपर उसे काट देना उनका मामूली दस्तूर हो गया। दस्तूर ही नहीं बल्कि वह तो उनकी एक पवित्र परम्परा हो गई, और वह मैदान और भी अधिक घांससे निबिड़ हो उठा। बात यहाँ तक पहुँची कि वह समूचा मैदान बुरी तरह भर गया। लोगोंने शिकायत की, और उसे सुधारनेके बहुतसे उपाय ढूँढ़ निकाले। एक ही तरकीब जो उन्होंने नहीं आजमाई, वह वही तरकीब थी जो उस भले बुद्धिमान किसानने बरसों पहले सुझाई थी। तब एक आदमी आया जिसने मैदानकी इस दुर्दशा पर गौर किया था। उस किसानकी बहुतसी विस्मृत सलाहोंमेंसे उसने वह सलाह खोज निकाली—जिसमें उस भले किसानने घांसको न काटकर उसे जड़से

उखाड़नेकी बात कही थी। तब वह जाकर मैदानके मालिकोंसे मिला और उन्हें सुझाया कि वे अनुचित काम कर रहे हैं, और उस भले बुद्धिमान किसानने मुद्दतों पहले उन्हें उनकी गलती सुझा दी थी।

क्या हुआ?

मालिकोंने उस आदमीकी चेतावनीकी सचाईकी कोई जाँच नहीं की। अगर उनकी नजरमें वह गलत थी, तो उसे गलत और निराधार साबित करनेकी भी कोई चेष्टा उन्होंने नहीं की, न उस भले, बुद्धिमान किसानकी बातका ही उन्होंने कोई प्रत्याख्यान किया। मैदानके मालिकोंने इनमेंसे एक भी बात नहीं की। उल्टे उन्हें इस आदमीकी चेतावनी से चोट पहुँची, सो उन्होंने उसे गालियाँ दीं। कुछने उसे मूर्ख और उद्धत करार दे दिया, गोयाकि सारी इन्सानियतमें उसी एक आदमीने उस किसानकी हिदायतको समझा है; कुछ लोगोंने उसे विद्वेषी, ढोंगी पैग़म्बर, और मिथ्याका प्रचारक कहा। उन लोगोंने, इस बातका क़तई ख़्याल नहीं किया कि उस आदमीने तो अपनी कोई राय प्रकट ही नहीं की है, बल्कि सबके श्रद्धाभाजन उस बुद्धिमान किसानकी बातको दोहराया भर है। बिना इस बातपर गौर किये ही बहुतोंने उस आदमीको खतरनाक क़रार दे दिया और कहा कि वह तो घासको और भी बढ़ानेके उपाय सुझाता है और इस तरह लोगोंको उनके मैदानसे वंचित कर देना चाहता है। वे लोग आपसमें बातें करने लगे, "वह आदमी कहता है कि घांसको काटो मत, और उसके कहनेसे अगर हम उसे नष्ट नहीं करते हैं तो घांस हमारे मैदानपर छा जायेगी और उसे बिल्कुल नष्ट कर देगी। और यदि उसपर हमें घांस ही उगाना है, तो वह मैदान हमें दिया ही क्यों गया था?" ये बातें करते समय जान-बूझकर लोग यह भूल जाते थे कि उस आदमीने यह नहीं कहा था कि घास को 'नष्ट' नहीं करना चाहिये; उसने तो सिर्फ इतना ही कहा था कि उसे काटना नहीं चाहिये, बल्कि जड़से उखाड़ देना चाहिये।

और यह राय कि 'यह आदमी मूर्ख है और ढोंगी पैगम्बर है या फिर इन्सानियतको नुक्सान पहुँचानेकी नीयत रखता है, लोगोंके दिलोंपर कुछ इस

ज़ादर जम गई कि हर आदमी उसे गाली देने लगा, उस पर नफ़रतकी नजर रखने लगा और उसकी हँसी उड़ाने लगा । लोगोंको ख़्याल हुआ कि अब यह आदमी स्थान-स्थानपर अपनी बात दोहराता फिरेगा कि वह घांसको बढ़ाना नहीं चाहता है। बल्कि वह तो मानता है कि हर किसानका यह कर्तव्य है कि वह घाँसके नष्ट करनेका प्रयत्न करे, जैसा कि उस भले और दानिशमंद किसानने बहुत पहले कहा था, और वह तो बस उस किसानके शब्दोंको ही दोहरा रहा है। भले ही वह आदमी इन बातोंको खुशीसे दोहराता फिरे। मगर लोग उसकी बातपर ध्यान नहीं देंगे, क्योंकि सब लोगोंने एक मतसे यह तय कर लिया था कि यह आदमी उस भले और बुद्धिमान किसानकी बातका खोटा अर्थ कर रहा है, और यह भी कि वह एक दुर्जन व्यक्ति है, जो लोगोंको घांस नष्ट करनेके उपायोंमें अनुत्साहित करता है और उल्टे उस घांसको बढ़ाना और उसकी रक्षा करना चाहता है।

मुझे भी उसी दुर्भाग्यका सामना करना पड़ा, जब मैंने धर्म-देशनाकी उस आज्ञाकी ओर संकेत किया : बुराईका प्रतिकार हिंसाके द्वारा न करो। प्रभु क्राइष्टने इस धर्माज्ञाको घोषित किया था, और बादमें उनके सभी सच्चे शिष्योंने इसी आज्ञा को दोहराया। पता नहीं कि लोगोंने इस आदेश की अवज्ञा की, या इसे समझा ही नहीं, या फिर इसपर आचरण करना उन्हें कठिन प्रतीत हुआ। बात जो भी रही हो, बढ़ते हुए समयके साथ प्रभुके इस आदेशको और भी पूरी तरहसे भुला दिया गया। लोगोंके जीवन-चरण दिन-दिन इस आदेशसे दूर ही पड़ते गये, और वस्तुस्थिति आज वहाँ आ पहुँची है, जहाँ हम उसे देख रहे हैं। यानी आज की स्थितिमें, आजके मनुष्यको प्रभुका यह आदेश एकदम नया, अश्रुतपूर्व, अजनबी और मूर्खतापूर्ण लगता है। और मुझे भी उसी दुर्भाग्यका सामना करना पड़ा जैसा कि उस आदमीको करना पड़ा था, जिसने लोगोंको उस भले, बुद्धिमान पुराने किसानका हवाला देकर यह कहा था कि 'घासको गाड़ो मत, उसे जड़से उखाड़ दो।'

मैदानके मालिकोंने जान बूझ कर ही इस बातको भुला दिया कि—बलात् इन्हें घाँस नष्ट नहीं करने दी गई थी, बल्कि उनसे यह कहा गया था

कि घांसको उचित उपायसे नष्ट करो; पर उन्होंने उसकी बातपर गौर ही नहीं किया और कह दिया—हम इसकी बातपर ध्यान नहीं देंगे, यह मूर्ख है; यह हमें घास काटनेसे रोकता है, यानी यह घांसको और बढ़ानेमें मदद करना चाहता है। ठीक वही मेरी चेतावनीके साथ भी घटा। मैंने कहा कि प्रभु क्राइस्टकी आज्ञाके अनुसार हमें बुराईका प्रतिकार हिंसासे नहीं करना चाहिये, बल्कि प्रेमके द्वारा उस बुराईको आमूल ही नष्ट कर देना चाहिये। लोगोंने उत्तर दिया—"हम उसकी बात नहीं सुनेंगे। वह मूर्ख है: वह हमें बुराईका प्रतिकार न करनेकी सलाह देता है; ताकि बुराई हमपर और भी जबर्दस्त हावी हो जाये।

मैंने क्राइस्टकी शिक्षाके अनुसार ही यह बात कही थी—कि बुराईको बुराई से मिटानेकी कोशिश नहीं करना चाहिये। हिंसाके द्वारा किया जानेवाला सारा प्रतिकार मात्र बुराईको बढ़ाता है; और यह कि क्राइस्टकी शिक्षाके अनुसार बुराई अच्छाई से ही नष्ट हो सकती है। जो तुम्हें शाप दे, उसे तुम वरदान दो; जो तुम्हें तुच्छ समझकर तुम्हारा दुरुपयोग करते हैं, उनके लिये प्रार्थना करो; जो तुमसे घृणा करते हैं, उन्हें तुम प्रेम करो, अपने शत्रुओंको प्यार करो : तब तुम्हारा कोई शत्रु नहीं रह जायगा।

क्राइस्टकी शिक्षाके अनुसार ही मैंने यह बात भी कही थी कि मनुष्यका सम्पूर्ण जीवन बुराईके साथ एक युद्ध है; और हमें विवेक और प्यारके साथ बुराईसे लड़ते चलना है। और इस युद्धके सारे उपायोंमें क्राइस्टने एक ही अनुचित उपायको नहीं अपनाया—और वह था हिंसाके द्वारा बुराईका मुकाबला करना, जिसका कि अर्थ होता है बुराईके द्वारा बुराईका प्रतिकार करना।

और मेरे इन शब्दोंका यह अर्थ समझा गया, कि मैं यह कहना चाहता हूँ कि 'क्राइस्टने बुराईका प्रतिकार न करनेकी शिक्षा दी थी। और उन तमाम लोगोंने जिनके जीवनोंका निर्माण हिंसाके आधारपर ही हुआ है, और इसीलिये हिंसा जिन के लिये मूल्यवान् है, बड़े खुश होकर मेरे, और इसीलिये क्राइस्टके शब्दोंके इस तोड़-मरोड़ किये हुए अर्थको अपना लिया। और यह आम तौरपर मान लिया गया

कि 'बुराईका प्रतिकार न करो' वाली शिक्षा गलत है, मूर्खतापूर्ण है, शैतानियतसे भरी और खतरनाक है। और लोग बड़े इतमीनानसे बुराईको नष्ट करनेके नामपर उसे और भी अधिक उभाड़ते जा रहे हैं।

दूसरा दृष्टान्त

कुछ लोग थे जो आटा, मक्खन, दूध और इसी तरह की और खाने-पीने की चीज़ोंका रोज़गार करते थे। उनमेंसे हर आदमी अपने पड़ौसीसे ज़्यादा नफ़ा कमाकर, जितना जल्दी हो सके, धनवान होना चाहता था। सो वे लोग अपने बिक्रीके खाद्य-पदार्थों में अनेक सस्ती और नुक्सानदायक चीजें मिलाकर बेचने लगे। आटेमें वे चूना और मिट्टी मिलाने लगे, मक्खनमें बनावटी मक्खनका मेल करने लगे और दूधमें चाक-मिट्टी तथा पानी मिलाने लगे। जब तक वे खाद्य-पदार्थ खरीदनेवालोंके हाथ न पहुँचे, तब तक तो उनका काम ठीक चलता रहा। व्यापारी अपना माल दूकानदारों को बेच देते और दूकानदार खोमचेवालोंको।

वहाँ आसपास बहुतसे वस्तु-भण्डार और दूकानें थी, सो रोजगार-धन्धा अच्छा चल निकला-सा लगता था, और व्यापारी संतुष्ट थे। मगर शहरके वे ग्राहक, जो अपनी जरूरतकी चीजें खुद नहीं बनाते थे और जिन्हें अपने उपयोगके लिये ये सब चीजें खरीदनी पड़ती थीं, उन पर इसका ख़राब असर हुआ, और वे किसी क़दर तकलीफ़में पड़ गये।

आटा ख़राब था, साथ ही मक्खन और दूध भी ख़राब था। मगर चूँकि शहरके बाज़ारमें इन अशुद्ध चीज़ोंको छोड़कर और कोई दूसरे खाद्यपदार्थ मिलते ही नहीं थे, इसलिये शहरके ग्राहक इस मालको स्वीकार करते गये। उन चीजोंके ख़राब स्वाद और हानिकारकताके लिये उन्होंने अपने-आपको ही दोषी मान लिया, कि शायद उनके पकानेमें ही कोई त्रुटि रह जाती होगी। उधर वे दूकानदार अपने बिक्रीके पदार्थोंमें और भी अधिक सस्ती चीजोंकी मिलावट करने लगे।

यह चीज़ बहुत अर्सेतक चलती रही। सभी शहर-वासी उस खाद्यके कारण कष्ट पा रहे थे, पर कोई भी अपने असंतोषको शब्दोंमें प्रकट करनेकी हिम्मत नहीं करता था।

कुछ समयके बाद किसी देहातसे एक स्त्री वहाँ आई, जो अपने परिवारके लिये सदा घरकी बनी चीजोंका ही उपयोग करती थी। इस स्त्रीने अपना सारा जीवन भोजन बनानेके काममें ही बिताया था। वह एक प्रथमश्रेणीकी रसोई बनानेवाली भले ही न भी हो, पर कम से कम रोजमर्राकी रोटी आदि सामान्य भोजन बहुत अच्छा बना सकती थी।

इस स्त्रीने भी इस नगरमें आकर कुछ खाद्यपदार्थ खरीदे, और रसोई बनाने लगी। रोटी ठीकसे पक नहीं पा रही थी, और बिखर-बिखर जारही थी। बनावटी मक्खनमें तली गई पूरियाँ बदजायका लग रही थीं, दूधको जब वह ठण्डा होनेके लिए छोड़ देती थी, तो उसपर मलाई नहीं जम रही थी। उस स्त्रीको तुरंत संदेह हुआ कि वे खाद्यपदार्थ ही खराब हैं। उसने ध्यानपूर्वक उन चीजोंकी जाँच की और पाया कि सचमुच उसका संदेह ठीक था। आटेमें उसे चूना मिला, मक्खनमें उसे बनावटी मक्खन मिला; और दूधमें चाककी मिलावट पाई गई। जब उसे यक़ीन हो गया कि वे सारे ही खाद्यपदार्थ ख़राब थे तो वह उस दूकानपर गई, और उसने उस दूकानदारको बुरी तरह फटकारा और उनसे कहा कि या तो उन्हें अच्छे, स्वस्थ, शुद्ध पदार्थ रखना चाहिये या फिर इस रोजगारको तिलांजलि देकर दूकान बन्द कर देनी चाहिये। पर इन दूकानदारोंने उस स्त्रीकी बातपर कोई ध्यान नहीं दिया और उससे यह कह दिया कि कई बरसोंसे सारा शहर उनकी चीजें खरीद रहा है, और कई बार तो उनको अपनी खाद्य-सामग्रीको विशिष्ट प्रशंसा भी मिली है; और उन्होंने अपनी दूकानके तख़्तोंपर टँगे मेडलोंकी ओर इंगित करके इस बातको प्रमाणित भी किया।

उस स्त्रीने उनकी एक बात न मानी। उसने कहा, "मुझे मेडलोंकी ज़रूरत नहीं है; मुझेतो अच्छी खाद्य-सामग्री चाहिए, ताकि उसे खानेपर मेरे और मेरे बच्चोंके पेटमें दर्द न हो।"

"जान पड़ता है, बुढ़िया, तूने अपनी जिन्दगीमें असली आटा और असली मक्खन देखा ही नहीं है"—दूकानदारोंने कहा। उन्होंने बुढ़ियाको वह चिकने वारनिश-

वाली परातोंमें रक्खा साफ़, सफेद-झकसा दिखता आटा दिखाया, सुन्दर तश्त-रियोंमें सजा हुआ वह नकली, निकम्मा मक्खन दिखाया, और उन चमकती-दमकती पारदर्शी काँचकी बर्नियोंमें भरा हुआ वह सफेद तरल पदार्थ भी दिखाया।

उस स्त्रीने जवाब दिया, "मैं खूब जानती हूँ, वह सब क्या है; क्योंकि अपनी तमाम जिन्दगीमें मैंने अपने और अपने बच्चोंके लिए खाना जुटाने और खानेके सिवा और कुछ नहीं किया है। तुम्हारे ये खाद्यपदार्थ अशुद्ध हैं। यह तो इसका सबूत" कहकर, उसने वह बिगड़ी हुई रोटी उन्हें दिखाई; पान-बेकवा वह नकली मक्खन, और दूधके तलमें जमी हुई किसी दूसरे पदार्थकी परत भी उन्हें दिखाई, फिर बोली, "तुम्हारा यह सारा सामान या तो नदीमें फेंक दिया जाना चाहिये, या जला दिया जाना चाहिये, और इसकी जगह तुम्हें अच्छी चीजें रखनी चाहिये।"

वह औरत उस दूकानके सामने खड़ी थी और बेतहाशा चिल्ला रही थी। वही बात उसने वहाँसे गुजरनेवाले हर ग्राहकसे भी कही, सो वे ग्राहक भी कुछ-कुछ संदेहमें पड़ गये।

दूकानदारोंने देखा कि यह बुढ़िया इस तरह उनके धन्धेको नुक़सान पहुँचा रही है। तब उन्होंने अपने ग्राहकोंसे कहा: "भले मानसो, जरा इस झक्की औरत को तो देखो, यह तो चाहती है कि लोग भूखों मरने लग जायँ। यह चाहती है कि सारे खाद्यपदार्थोंको या तो नदीमें फेंक दिया जाना चाहिये, या फिर जला देना चाहिये। भला आप ही बताइये, अगर हम इस औरतका कहा मानकर सब चीजें फेंक देंगे तो आप लोग खायेंगे क्या? आप उसकी बातोंपर ध्यान न दीजिए। यह तो कोई अहमक देहाती औरत जान पड़ती है, खानेकी चीजोंसे यह—नावाक़िफ़ है और महज जलन-कुढ़नसे हमारी चीजोंके नुक़्स निकाल रही है। बात असलमें यह है कि यह औरत खुद गरीब है, सो औरोंको भी इसी हालतमें देखना चाहती है।"

वहाँ जो भीड़ इकट्ठा हो गई थी उसके सामने इसी क़िस्मकी बातें करके वे शानदार लोगोंका समाधान करने लगे। मगर उन्होंने जो एक बात पोशीदा रक्खी,

वह यह थी कि वह औरत खाद्यसामग्रियोंको नष्ट करना नहीं चाहती थी वह तो सिर्फ इतना ही चाहती थी कि उन खराब चीजोंके स्थानपर अच्छी चीजें रक्खी जायें।

तब वह भीड़ उस औरतपर टूट पड़ी और उसे गालियाँ देने लगी। उस औरतने हरचन्द दोहरा-दोहराकर यह बात कही कि—वह खाद्य-सामग्रीका नाश नहीं चाहती, बल्कि उलटे उसने तो अपनी तमाम उम्र अपने लिए और औरोंके लिये खाना बनानेमें ही गुजारी है, और इसीलिए वह चाहती है कि जिन लोगोंपर अपने मानव-बन्धुओंके लिए खाद्य सामग्री जुटानेका जिम्मा है, वे लोग जो चीज खाद्यके नामपर दूसरोंको दें—उसे खराब चीजोंकी मिलावटके जहरसे दूषित न करें। चाहे जितनी ही बार और चाहे जो कुछ भी उसने कहा हो, पर लोगोंने उसपर जरा भी ध्यान नहीं दिया। क्योंकि लोगोंके मनमें इस बातका निश्चय हो गया था कि वह सारे शहरके आदमियोंको उनके आवश्यक खाद्यपदार्थोंसे वंचित कर देना चाहती है।

हमारे आजके युगके विज्ञान और कलापर मैंने जब अपने विचार प्रकट किए तो मुझे भी इसी दुर्भाग्यका सामना करना पड़ा। अपना समूचा जीवन मैंने इसी भोज्यके आसरे बिताया है, और भली-बुरी तरह, जैसा भी कर सका, औरोंको भी इस भोज्यसे तृप्ति देनेके लिए मैंने कुछ कष्ट भी उठाया है। और चूँकि मेरे लिए ये चीजें किसी व्यवसाय या मनोरंजनका साधन-भर न रहकर, एक पोषक भोज्य पदार्थके रूपमें रही हैं, इसीसे सारे संदेहोंके परे एक बात मैं निश्चित रूपसे जानता हूँ कि कब भोजन ठीक भोजन होता है, और कब वह भोजन सिर्फ भोजन जैसा लगता-भर है। हमारे युगके विज्ञान और कलाके बाजारोंमें बिकनेवाले भोजनको जब मैंने चख लिया, और उसके द्वारा जब अपने प्रियजनोंका पोषण करनेकी कोशिश की, तो मैंने पाया कि उस भोजनमेंका अधिकांश भाग निःसत्व और बनावटी था। मैंने कहा कि "आजके बौद्धिक बाज़ारमें दूकानदार लोग जो विज्ञान और कला बेच रहे हैं, वह निःसत्व और बनावटी है। सच्ची कला और विज्ञानको अशुद्ध चीजें मिलाकर व्यभिचारित कर दिया गया है; यह बात मैंने इसलिये कही कि बौद्धिक बाज़ारमें

जो चीजें बिक रही थीं उन्हें खरीद कर उनका उपयोग करने पर मैंने पाया कि वे तो कुपथ्य हैं; इतना ही नहीं, बल्कि उनके उपयोगसे मुझे और प्रियजनोंको भारी नुकसान पहुँचा है।" यह बात जब मैंने बहुत स्पष्ट शब्दोंमें खोलकर कही तो लोगों ने मुझे खूब फटकारा और गालियाँ दीं। उन्होंने मेरे कानोंमें जोर-जोर से इस बात की घोषणा की कि चूँकि मैं विद्वान नहीं हूँ, और ऊँची चीजोंकी जाँच-परखका अन्दाज मुझे नहीं है, इसीसे मैं ऐसी बातें कर रहा हूँ। तब मैंने यह साबित करना शुरू किया कि इन बौद्धिक सामग्रियों के दूकानदार परस्पर ही एक-दूसरे पर बेईमानी का इलजाम लगा रहे हैं। मैंने उन्हें याद दिलाया कि कला और विज्ञानके नाम पर हर बार मनुष्योंको अनेक तरहकी हानिकारक और बुरी चीजें दी जा रही हैं। मानना चाहिए कि यह हमारे युग का एक बहुत बड़ा खतरा है। यह एक बहुत गम्भीर और शोचनीय विषय है। दैहिक विषसे यह बौद्धिक विष हजारगुना अधिक खतरनाक है। तब यह जरूरी हो जाता है कि जो बौद्धिक सामग्री हमारी प्रजाको भोज्य रूपमें दी जा रही है, उसकी जाँच बहुत सावधानी से होना चाहिए; और उसमें जो भी हानिकारक या बनावटी तत्व पाया जाये, उसे निकाल फेंकना चाहिए। ये सारी बातें जब मैंने कही तो किसीने भी—किसी एक भी व्यक्तिने, मेरे इन शब्दोंको अप्रमाणित सिद्ध करनेके लिए कोई एक भी वक्तव्य नहीं निकाला और न कोई किताब ही लिखी। पर अपनी दूकानोंमें बैठ कर ही दूकानदारोंने मुझ पर झिड़कियाँ बरसाई जैसा कि उस स्त्री के साथ हुआ था। "वह आदमी मूर्ख है? वह उस कला और उस विज्ञानको नष्ट करना चाहता है, जिस पर हमारे जीवन आधारित हैं। इससे सावधान रहो, और इसकी बात पर कोई ध्यान मत दो? हमारे पास आओ—हमारे पास! हमारे पास नई से नई किस्मकी विदेशी सामग्री है।"

तीसरा दृष्टान्त

कुछ घुमक्कड़ एक सड़क से यात्रा कर रहे थे। इत्तिफ़ाक़ से वे रा[illegible] गये। अब जिस रास्ते वे चल रहे थे वह सुगम नहीं था। वह रास्ता झंखाड़ और काँटों में होकर गुजरता था; बीच-बीच में बड़े

को रोके हुए थे। ज्यों-ज्यों वे लोग आगे बढ़ रहे थे, रास्ता और भी अधिक दुर्गम हो रहा था।

तब वे घुमक्कड़ दो दलों में विभाजित हो गये। एक दलने तय किया कि जिस रास्ते वे चल रहे हैं, उसीपर वे सदा आगे बढ़ते जायेंगे। उन्होंने अपने-आप से और दूसरों से कहा कि अपनी सही दिशा से वे कभी भटके नहीं हैं, और इस-लिए उन्हें यक़ीन था कि वे अपने मंज़िले-मक़सूद पर पहुँच जायेंगे। दूसरे दलने निश्चय किया, कि जिस दिशा में वे अभी आगे बढ़ रहे थे, वह ग़लत थी। यदि ऐसा न होता तो वे कभी के अपने मंज़िले-मक़सूदतक पहुँच जाते। इसलिए ज़रूरी है कि वे दूसरा रास्ता खोजें। इन दो मतोंके अनुसार वे घुमक्कड़ दो दलोंमें बँट गये। कुछ लोगोंने उसी रास्तेपर बढ़े चलना तय किया, और कुछ लोगों ने सभी दिशाओं में आगे बढ़ने की सोची। उनमें सिर्फ़ एक ही आदमी ऐसा था, जो इन दोनोंही मतोंसे सहमत नहीं था। उसका कहना था कि--उसी रास्ते पर आगे बढ़ने या उजलत करके सभी दिशाओं में राह खोजने के पहले उन्हें एक स्थान पर शान्त भाव से खड़े रह कर स्थिति पर विचार करना चाहिए। ठीक तरह सोच-विचार कर लेने पर ही, इस या उस रास्ते पर आगे बढ़ना चाहिए। पर वे घुमक्कड़ तो अपने नित्यके भटकनेकी आदतसे बहुत उत्तेजित और उतावले हो रहे थे; और अपनी मौजूदा स्थितिसे वे बेहद घबड़ा गये थे। वे तो अपने मनमें तुरन्त यह आश्वासन पा जाना चाहते थे, कि वे गुमराह नहीं हुए हैं, बल्कि सिर्फ़ जरा देर को रास्ता भूल गये थे, और अब तुरन्त ही अपना सही रास्ता पा जायेंगे। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि दोनों ही दल बहुत भयभीत हो उठे थे, और चाहे जैसे चलते रह कर वे अपने मनके भय और परेशानीको दबा देना चाहते थे। इसीसे वे दोनों ही दल इस आदमीकी रायसे बहुत खिन्न हुए; वे उसे झिड़कने लगे और उसका तिरस्कार भी करने लगे। एक दलने तो यहाँ तक कहा कि इस सलाहमें कमज़ोरी, डरपोकपन और आलसका परिचय मिलता है।

अपने मंज़िले-मक़सूदपर पहुँचनेका भला क्या ही अच्छा तरीक़ा इस आदमी

ने बनाया है ? यानी हम यहाँ रुक जायें और आगे न चलें। उन लोगोंने उस आदमी का मजाक़ उड़ाया। क्या इसीका नाम आदमियत है ? क्या इसीलिए सारी बाधाओं और आफ़तों से लड़ते हुए, अडिग क़दम, अपने लक्ष्य पर पहुँचने की शक्ति हमें दी गई है ?

उस बहुमतसे अलग हो जानेवाले आदमीने हर चन्द अपनी बात दोहराई। उसने कहा कि गलत दिशामें होनेवाली गति उन्हें अपने उद्दिष्ट स्थान पर पहुँचाने के बजाय, उससे और दूर ही ले जायगी; और ये जुदा-जुदा रास्तोंके प्रयोग भी उन्हें सही जगह पर नहीं पहुँचा सकेंगे। उसने कहा कि अपने ठीक लक्ष्यपर पहुँचने का एक मात्र रास्ता यही है कि सूर्य और नक्षत्रोंके आधारपर हम अपने मार्गका अध्ययन करें और फिर उसीपर आगे बढ़ जायें, और इसके लिए यह जरूरी है कि पहले उन्हें एक स्थानपर रुक जाना चाहिए, यह रुकना निश्चेष्ट हो कर खड़े रह जानेके लिए नहीं है। रुक कर हमें अपना सही रास्ता निर्धारित करना है और फिर अचूक उसपर आगे बढ़े चलना है। पर हर हालतमें एक बार रुक कर सोचना जरूरी है। न जाने कितनी बार उस आदमीने अपनी इन बातोंको दोहराया, पर किसीने उसकी बातपर गौर नहीं किया।

और वह पहला दल अपने उसी रास्तेपर चल पड़ा, जिसपर वे लोग चल रहे थे। दूसरा दल निरुद्देश्य रूपसे इधर-उधर भटकने लगा। दोनोंमेंसे कोई भी अपने निर्दिष्ट लक्ष्यपर नहीं पहुँच पा रहे थे। सच बात तो यह है कि वे तब उन कँटीले झाड़ी-झंखाड़ोंके बाहर निकल ही नहीं पा रहे थे; वे तो रह-रहकर उसीमें उलझ रहे थे

ठीक यही दुर्भाग्य मेरे सामने भी आया, जब मजदूरोंकी समस्या हल करनेके लिए निर्धारित किये गये रास्तेके बारेमें मैंने अपना सन्देह प्रकट किया। मैंने कहा कि इस रास्तेने हमें मजूर-समस्याके अँधेरे जंगलमें लाकर छोड़ दिया है; बेशुमार फौजोंका यह दल-दल हमें चारों ओरसे आक्रान्त कर देनेकी धमकी दे रहा है। मैंने कहा कि इस रास्तेके सही होनेके बारेमें मुझे गहरा सन्देह है। मैंने अपना मत

पहुँच सकेंगे, जो सुख केवल कुछ व्यक्तियों, या एक समूह-विशेष तक ही सीमित नहीं होगा, बल्कि तमाम मानव-जातिका वह सार्वभौम सुख होगा, जिसकी कि पुकार जन-जनके हृदयसे उठ रही है।

और क्या हुआ ?

हर कल्पनीय बात मनुष्यने सोच डाली है, सिवा उस एकमात्र बातके जो उसे बचा सकती है। यदि समूचा न भी बचा सके तो कमसेकम उसे उसकी आजकी स्थितिसे मुक्त करा सकती है। और वह यही बात है कि कमसेकम एक क्षणके लिये तो मनुष्य रुककर सोचे, और अपनी गलत चेष्टाओंसे अपनी तकलीफ़ोंको न बढ़ाता जाये। मनुष्य अपनी दुखस्थितिका अनुभव कर रहा है, और उससे भाग छूटनेके हर उपाय आजमा रहा है। पर वह एक ही चीज जो उसे मुक्त कर सकती है, उसे वह किसी भी क़ीमतपर करनेको तैयार नहीं है। और इस बातकी सलाह उन्हें जब दी जाती है, तो वे इतने क्षुब्ध और कटु हो जाते हैं, जितना कि और किसी चीजसे नहीं होते।

अगर हमें अपने रास्ता चूक जानेके बारेमें अभी भी संदेह है, तो यह रुककर सोचनेकी चेतावनीके प्रति जो आज आदमीका अवज्ञाका रुख है, वही उन्हें भविष्य की भी स्पष्टतासे प्रमाणित कर दिखायेगा, कि हम किस बुरी तरहसे रास्ता चूक गये हैं और हमारी निराशा कितनी भयानक है।

राजा अश्रद्दन

राजा अश्रद्दनने राजा लाइलिदेके राज्यको जीत लिया। उसने उस राज्यके नगरोंका ध्वंस करके उन्हें जला दिया, वहाँके प्रजाजनोंको वह बलात्कारपूर्वक देश लिवा ले गया, वहाँके सैनिकों और सरदारोंको उसने मार डाला और लाइलिदेको एक पिंजड़ेमें डाल दिया।

रातको अश्रद्दन जब अपनी शय्यापर लेटा हुआ था, तो वह विचार कर रहा था कि वह लाइलिदेका खातमा करदे। एकाएक उसे अपने निकट ही एक आवाज सुन पड़ी। उसने अपनी आँखें खोलीं: उसने देखा कि उसके सामने **एक पुरातन**

पुरुष खड़ा है; उसकी दाढ़ी कबरी है और उसकी आँखोंसे सौम्यता टपक रही है।

"तुम लाइलियेका प्राण लेना चाहते हो ?" उस पुरातन पुरुषने पूछा।

"हाँ" राजाने उत्तर दिया, "सिर्फ़ अभीतक मेरी समझमें यही नहीं आया है कि, कैसे उसका खातमा कर दूँ ?"

"पर तुम स्वयं ही लाइलिये हो" उस पुरातन पुरुषने कहा।

"यह बात सच नहीं है" राजाने कहा, "मैं, मैं हूँ; और लाइलिये, लाइलिये है।"

"तुम और लाइलिये एक ही हो !" पुरातन पुरुषने कहा—"तुम्हारी भूल है; अगर तुम यह मानते हो कि तुम लाइलिये नहीं हो, और लाइलिये तुममें नहीं है।"

"क्या मैं भूल रहा हूँ ?" राजाने कहा, "क्या मैं यहाँ अपनी सुकोमल शैयामें नहीं लेटा हूँ, और क्या मेरे चारों ओर मेरे आज्ञाकारी गुलाम प्रस्तुत नहीं है, कि मेरे आज्ञा देते ही वे उसका पालन करें ? और क्या ठीक आजकी ही तरह कल भी मैं अपने मित्रोंके साथ दावत नहीं करूँगा ? जबकि वह लाइलिये एक परिन्देकी तरह अपने पिंजड़ेमें बैठा ? और क्या कल वह जबान निकालकर अपनी सूलीकी नोकपर नहीं छटपटाया, जबतक कि वह मर नहीं जायेगा और कुत्ते उसकी लाशको फाड़ नहीं खायेंगे ?"

"तुम उसकी प्राण-हानि नहीं कर सकते !" पुरातन पुरुषने कहा।

"और क्या हुआ होगा उन चालीस हजार सिपाहियोंका जिन्हें मारकर मैंने पहाड़में चुनवा दिया है ?" राजाने कहा "मैं तो ज़िन्दा हूँ, पर वे तो कभीके मर चुके हैं। तुम देख रहे हो न, कि मैं कैसे प्राण-हानि कर सकता हूँ ?"

"भला यह तुम क्या जानो कि अब वे नहीं रहे हैं ?"

"क्योंकि मैं उन्हें देख नहीं रहा हूँ। खासकर इसलिये भी कि उन्होंने यंत्रणा झेली है, और मैंने ऐसा कोई कष्ट नहीं झेला। वे अभागे थे और मैं भाग्यवान हूँ।

"यह बात भी गलत है। तुमने अपने ही को यंत्रणा दी है, उन्हें नहीं।"

तुम्हारी बात मेरी समझमें नहीं आ रही" राजाने कहा।

"क्या तुम समझना चाहते हो?"

"हाँ ज़रूर समझना चाहता हूँ"

"तो यहाँ आओ" और उस पुरातन पुरुषने राजाको एक पानीके टबके पास आनेका इशारा किया।

राजा उठकर उस टबके पास चला गया।

"कपड़े उतार दो, और इस टबमें उतर जाओ"

अश्रद्धनने उस पुरातन पुरुषकी आज्ञाका अनुसरण किया।

"अब जब मैं यह पानी तुम्हारे ऊपर उड़ेलूँ, तो तुम अपना सर इस पानी में डुबा लेना" एक कटोरेमें पानी भरते हुए पुरातन पुरुषने कहा।

पुरातन पुरुष कटोरेका पानी राजाके सिरपर उड़ेलने लगा, और राजा पानीमें डुबकी लगा गया।

राजा अश्रद्धनने ज्यों ही अपना सिर पानीमें डुबाया कि तुरंत उसे प्रतीत हुआ कि वह अश्रद्धन नहीं है, बल्कि कोई और है। और जिस क्षण उसने अनुभव किया कि वह कोई और है, तभी उसने देखा कि वह आप एक बहुमूल्य तल्तपर लेटा हुआ है, और उसके पास ही एक सुन्दर स्त्री लेटी हुई है। उसने इस स्त्रीको पहले कभी नहीं देखा था, पर वह जानता था कि वह उसकी पत्नी है। वह स्त्री उठ खड़ी हुई और उससे बोली "लाइलिये, मेरे प्यारे पति, पिछले कुछ दिनोंकी परेशानियोंसे तुम थक गये हो, और इसलिये और दिनोंकी अपेक्षा आज तुम कुछ अधिक समय तक सोये रहे हो। मैंने तुम्हारी नींदपर पहरा दिया है, और तुम्हें जगाया नहीं है, लेकिन अब सभी राजा बड़े दीवानखानेमें तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पोशाक धारण करो, और उनके पास जाओ।"

इन शब्दोंको सुनकर अश्रद्धनको प्रतीति हो गई कि वह लाइलिये है। उसे ज़रा भी आश्चर्य नहीं हुआ। आश्चर्य उसे था तो केवल इसी बातका कि अब तक वह यह बात क्यों नहीं जान सका था। वह उठ बैठा; उसने कपड़े पहने और उस बड़े दीवानखानेकी ओर चला, जहाँ वे राजागण उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

राजाओंने बड़े आदरके साथ झुककर अपने राजा लाइलियेका स्वागत किया। फिर वे सीधे खड़े हो गये और राजाके आदेशको सुनकर अपने-अपने स्थानपर बैठ गये। तब उन राजाओंमें सबसे अधिक वयस्क राजपुत्रने कहा : उस दुष्ट राजा अश्रद्धनके अपमान अब और नहीं झेले जाते; उसके विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया जाना चाहिये।

पर लाइलियेने इस बातको मंजूर नहीं किया। उसने आज्ञा दी कि दूत भेजकर अश्रद्धनके विवेकको सम्बोधित किया जाये। लाइलियेने उन राजाओंको जानेकी छुट्टी दे दी। तब उसने अपने कुछ सरदारोंको दूत नियुक्त किया और जो सन्देश राजा अश्रद्धनके पास वह भेजना चाहता था उसे ब्यौरेवार उसने उन सरदारोंको सुझा-समझा दिया।

यह हो जानेपर, अश्रद्धन, जो अपनेको लाइलियेके रूपमें पा रहा था, जंगली गधोंके शिकारके लिये पहाड़ोंमें गया। भाग्यने उसपर मुस्करा दिया; उसने स्वयम् ही दो गधोंको मार दिया, और वह अपने घरकी ओर लौट आया। उसने अपने मित्रोंके साथ दावतकी और फिर वह दास-बालाओंका नृत्य देखनेमें रत हो गया।

दूसरे दिन, अपने दस्तूरके मुताबिक़, वह अपने दरीख़ानेमें गया; वहाँ अर्जीदार पक्षकार, आरोपी आदि लोग उसकी प्रतीक्षामें थे; उसने यथावत् अपनी अदालत की कार्यवाही की। उसके बाद फिर वह अपने प्रिय मनोरंजन, आखेटपर निकल पड़ा; उस दिन उसने सफलतापूर्वक एक वृद्ध सिंहनीको मार डाला और उसके दो बच्चोंको उठा लाया।

शिकारके बाद फिर उसने अपने मित्रोंके साथ दावतें कीं, संगीत और नृत्यका आनन्द लिया, और सन्ध्या अपनी प्यारी पत्नीके साथ बिताई।

इसी तरह दिन बीतने लगे। सप्ताह बीतने लगे। वह अश्रद्धनके पास (जो वह स्वयम् कभी रहा था) भेजे हुए अपने दूतोंके लिए प्रतीक्षा कर रहा था।

एक महीने बाद वे दूत अपने नाक-कान कटवाकर वापस लौट आये।

राजा अश्रद्धनने लाइलियेको यह कहलवा भेजा था कि 'यदि वह आगेसे

अश्रद्धनको चाँदी, सोना और सिपरसकी लकड़ीके रूपमें भेंट देना आरंभ नहीं कर देगा, और स्वयम् उपस्थित होकर अश्रद्धनके आगे सिर नहीं झुकायेगा, तो उसकी भी वही दुर्गति होगी, जो उसके दूतोंकी हुई है।'

लाइलियेने, जो कभी स्वयम् अश्रद्धन रहा था, अपने राजाओंको बुलाकर फिर मशविरा किया, और उनकी सलाह चाही कि अब क्या किया जाना चाहिए। सबने एक स्वरमें यही राय दी कि हमें अश्रद्धनके आक्रमणकी प्रतीक्षा न करके स्वयम् ही उसके देशपर आक्रमण कर देना चाहिये। राजाने उनकी बात मान ली, उसने सेनाका नेतृत्व अंगीकार किया और रणक्षेत्रकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें उन्हें सात दिन लग गये। इस दरमियान प्रतिदिन राजा अपनी सेनाका निरीक्षण करता और अपने सैनिकोंके शूरातनको प्रोत्साहित करता।

आठवें दिन नदी-तीरकी एक चौड़ी घाटीमें उसकी सेना जाकर अश्रद्धनकी सेना से भिड़ गयी। लाइलियेकी फौजें बड़ी वीरतासे लड़ीं, पर लाइलिये (जो स्वयम् कभी अश्रद्धन था) ने देखा कि उसका शत्रु-सैन्य चीटियोंकी तरह पहाड़ोंपरसे उतरा आ रहा है और घाटियोंपर छाता हुआ वह उसकी सेनाको पादाक्रान्त कर रहा है। उस शत्रुपर भयानक आक्रमण करते हुये वह स्वयम् अपने रथमें झपटता हुआ युद्धके बीचोंबीच कूद पड़ा। पर लाइलियेके सैनिक जब मात्र सैकड़ों की संख्यामें थे, तब अश्रद्धनके सैनिक हजारोंकी संख्यामें थे; लाइलियेने अनुभव किया कि उसे करारी चोट लगी है और वह बन्दी बना लिया गया है।

दूसरे युद्ध-क़ैदियोंके साथ साँकलसे बँधा हुआ वह नौ दिन तक अश्रद्धनके सैनिकोंसे घिरा चलता रहा। दसवें दिन वह निनेवेह लाया गया और वहाँ एक पिंजरेमें डाल दिया गया। एक ओर लाइलियेके दग्न फनक रहे थे और दूसरी ओर वह भूखकी वेदनासे छटपटा रहा था। पर उससे भी बड़ा संताप उसे अपने अपमान और नपुंसक क्रोधपर हो रहा था। अपने शत्रुके हाथों जो अत्याचार उसने सहन किया था उसका बदला चुकानेके लिये वह अपनेको असमर्थ पा रहा था।

एक ही बात वह कर सकता था। अपने शत्रुको उसकी अपनी यंत्रणा देखनेका

अवसर वह चाहे तो नहीं भी दे सकता है; अतएव उसने यह वीर्यवान निश्चय कर लिया कि रंच मात्र भी ऊहापोह किये बिना वह सब कुछ सहन कर ले जायगा, फिर जो भी अत्याचार उसपर गुज़रे।

बीस दिन तक वह पिंजड़ेमें बैठा मरण-दण्डकी प्रतीक्षा करता रहा। उसने देखा कि उसके आत्मीय, सम्बन्धी और मित्रोंको मरण-दंडके लिये ले जाया जा रहा है, उसने उन लोगोंकी वेदनाकी चीत्कारें भी सुनीं, जिनके हाथ-पैर काट डाले गये थे। पर उसने किसी भी प्रकारकी बेचैनी, दया या भीतिका भाव प्रकट नहीं होने दिया। उसने देखा कि हीजड़े (दासियाँ) उसकी प्यारी पत्नीको जंजीरोंमें जकड़कर ले जारही हैं, वह जान गया कि वे उसे अश्रद्धनकी दासी बनानेके लिये ले जारही हैं। और यह सब भी उसने बिना कोई गिला किए सहन कर लिया।

तभी दो जल्लादोंने आकर पिंजड़ेका द्वार खोला। उन्होंने लाइलिएके दोनों हाथों को एक रस्सीसे उसके पीछे बाँध दिया और वे उसे रक्तरंजित सूलीके मंचपर ले गए। उसने सूलीकी उस तीखी और रक्ताक्त नोकको देखा जिसने अभी-अभी उसके मित्रके शरीरका छेदन किया है, और उसने यह भी समझ लिया कि अब यह सूली उसीके छेदनके लिए खाली होकर प्रस्तुत है।

उसके कपड़े उतार दिए गये। अपने इस सुन्दर और बलवान शरीरके इस विनाशपर लाइलिएको एक बार कँपकँपी आगई।

दो जल्लादोंने उसके शरीरको उसके चूतड़ थामकर उठाया और उसे सूलीकी नोकपर डाल देनेको उद्यत हुए।

मेरे सामने मौत है, सत्यानाश ? लाइलिएको विचार आया। अंतिम क्षण तक अपने अडिग् पौरुषको निबाहनेका निश्चय वह भूल गया। वह सिसकने लगा, और प्राणकी भिक्षा माँगने लगा। पर किसीने उसकी बात नहीं सुनी।

लेकिन यह बात असम्भव है, उसने सोचा, शायद मैं सो रहा हूं। यह एक सपना है। और उसने जागनेका एक सशक्त प्रयत्न किया। और मैं तो लाइलिए हूँ ही नहीं, मैं अश्रद्धन हूँ—उसे ख़्याल आया।

"तुम्हीं लाइलिए हो और अश्रद्धन हो" उसे एक आवाज सुनाई पड़ी, और उसे अनुभव हुआ कि उसका देह-छेदन आरंभ हो गया है। वह चिल्ला उठा और उसने अपना सिर उस टबमेंसे ऊपर उठा लिया। वह पुरातन पुरुष कटोरेका अंतिम पानी उसपर उँडेलता हुआ उसपर झुका हुआ था।

"मैंने जाने कैसी भयानक यातनायें सही हैं—और वह भी जाने कितने समय तक!" अश्रद्धनने कहा।

"कितने समय तक!" उस पुरातन पुरुषने पूछा, "तुमने सिर्फ अपना सिर इस टबमें डुबाया और तुरंत ही फिर ऊपर उठा लिया। देखो न, इस कटोरेका पानी भी अभी तो पूरा नहीं उड़ेला गया है। अब तुम्हारी समझमें आया?"

अश्रद्धनने उत्तरमें एक शब्द भी नहीं कहा, केवल भयभीत होकर वह उस पुरातन पुरुषकी ओर देखता रहा।

वह पुरातन पुरुष फिर बोला—

"अब तुम्हारी समझ में आया कि लाइलिये और तुम, दोनों एक ही हो और साथ ही जिन सिपाहियों को तुमने मरवा डाला है वे भी तुम्हारे साथ एकात्म हैं। इतना ही नहीं बल्कि वे प्राणी जिन्हें तुमने अपने आखेटमें मार कर अपनी दावतों में खा डाला था, वे भी तुम्हारे साथ एकात्म हैं, तुम सोचते थे कि जीव तुम्हारे ही हैं, पर मैंने इस भूलका पर्दा हटा दिया और तुमने यह साफ़ देख लिया कि औरों के प्रति जो बुराई तुम करते हो, वह तुम अपने प्रति भी करते हो। सभीके भीतर एक ही प्राण हैं, और तुम स्वयम् उसके एक अंश-मात्र हो। और अपने भीतर के उस एक प्राणांशमें होकर भी तुम समूचे जीवनका हित या अहित कर सकते हो, उसे बढ़ा सकते हो या कम कर सकते हो। तुम अपने जीवन का कल्याण तभी कर सकते हो, जब कि तुम अपने और दूसरे जीवों को अलग-अलग करनेवाली यह बीच की बाधक दीवार तोड़ दोगे, और जब तुम प्राणिमात्रको आत्मवत् समझकर उन्हें प्यार करने लगोगे। पर दूसरे प्राणियोंकी प्राण-हानि करना तुम्हारे बसकी बात नहीं है। जिन जीवोंको तुमने मार डाला है, वे तुम्हारी नजरसे परे बराबर

चले गये हैं, पर उनका अस्तित्व लोप नहीं हो गया है। तुम्हारा ख्याल था कि तुम अपने जीवन को बढ़ा रहे हो और दूसरों के जीवन को घटा रहे हो; पर यह करना भी तुम्हारे क़ाबूकी बात नहीं है। जीवनके लिये न देशकी ही वाधा है न काल की ही बाधा है। जीवन एक चण में भी रह सकता है और वही जीवन हजार बरस का हो सकता है; विश्वमें तुम्हारा जीवन और प्रत्येक गोचर-अगोचर प्राणिका जीवन एक ही है। न तो हम जीवनका नाशही कर सकते हैं, न उसे बदल सकने हैं, क्योंकि जीवन मात्र एक ही है। और सब कुछ मिथ्या है।"

इतना कह कर वह पुरातन पुरुष लोप हो गया।

अगले ही दिन सवेरे राजा अश्रद्धनने आज्ञा दी कि लाइलिये तथा उसके सब सैनिकोंको मुक्त कर दिया जाय, और लाइलियेको मृत्यु-दण्ड न दिया जाय।

और उसके दूसरे दिन उसने अपने पुत्र असुर बेनिपालको बुलाकर उसे सिंहासन सौंप दिया; वह स्वयं एक रेगिस्तानमें चला गया, और वहाँ जाकर अपने पाये हुए तत्वपर ध्यान करने लगा। इसके बाद वह एक परिव्राजक की तरह नगरों और गाँवोंमें भ्रमण करने लगा, और घूम-घूम कर लोगोंको उपदेश देने लगा कि जीवन मात्र एक है, और मनुष्य जब दूसरे को आघात पहुँचाने की बात सोचता है तो वह अपने ही को आघात पहुँचाता है।

मनुष्यके जीवनका आधार क्या है?

हम जानते हैं कि हम मरणसे जीवनके लोकमें आगये हैं, क्योंकि हम अपने भाईयों को प्यार करते हैं। जो अपने भाईको प्यार नहीं करता है, वह मौत के ही वशीभूत हो रहता है (१ जॉन iii. १४)

लेकिन जिस किसीके पास भी इस दुनियाँकी सारी अच्छी सामग्रियाँ हैं, फिर भी उसका भाई जरूरतमंद और पीड़ित है और वह अपनी दया और सहानुभूति की अंजलि उस भाईके प्रति नहीं खोलता है; उसमें प्रभुका प्यार कैसे निवास कर सकता है? (iii.१७)

मेरे छोटे बच्चो, हमें खाली शब्द और जबानका ही प्रेम नहीं देना है, हमें

तो अपने यथार्थ आचरण और कर्ममें प्रेमका दान करना है। (iii. १८)

प्रेम प्रभुके भीतरसे ही उत्पन्न होता है, जो प्रेम करता है उसने प्रभुके ही भीतरसे जन्म पाया है और वह प्रभुको जानता है। (iiii.७)

किसी भी मनुष्यने कभी भी प्रभुको देखा नहीं है। जब हम एक दूसरेको प्यार करते हैं, तभी प्रभु हमारे भीतर वास करता है, और उसका प्रेम हमारे ही भीतर पूर्णता पाता है। (iiii. १२)

प्रभु ही प्रेम है; और जो प्रेमके भीतर जीता है, वही प्रभुके भीतर जीता है, और प्रभु उसके भीतर जीता है। (iiii. १६)

यदि कोई मनुष्य कहता है कि मैं प्रभुको प्रेम करता हूँ, और फिर भी वह अपने भाई से घृणा करता है, तो वह झूठ बोलता है; क्योंकि जो अपने प्रत्यक्ष दीखनेवाले भाईको प्रेम नहीं कर सकता, वह उस प्रभुको कैसे प्रेम कर सकता है, जिसे उसने देखा ही नहीं है? (iiii. २०)

[१]

किसी ज़मानेमें एक मोची था, जो अपनी स्त्री और बच्चोंके साथ एक किसान के घर में रहा करता था।

उसके पास न तो मकान ही था और न धरती थी। अपने हाथकी मजूरीसे ही वह अपना और अपने परिवार का भरण-पोषण किया करता था।

रोटी महँगी थी और काम सस्ता था, सो वह जो कुछ कमाता था सब वह खा जाता था।

पुरुष और स्त्रीके बीच सिर्फ भेड़की खालका एक कोट था, और वह भी जरजर-कंथा हो रहा था। पिछले दो बरसोंसे मोची एक नये कोटके लिये भेड़की खाल ख़रीदनेका इरादा कर रहा था।

जब तक उस प्रदेशमें शीतकाल आरम्भ हुआ, तब तक उस मोचीने कुछ धन (रूबल) जुटा लिये थे। उसकी स्त्रीके हाथमें तीन रूबल थे, और गाँवके

किसानोंमें उसका पाँच रूबल और बीस कॉपेक लेना बाक़ी था।

इसीसे वह मोची एक दिन सबेरे तड़के ही उठकर गाँवमें चमड़ा ख़रीदने गया। अपनी कमीज़पर उसने अपनी स्त्रीका रूईदार सूती जाकट पहन लिया; उसके ऊपर उसने एक कपड़ेका चोगा डाल लिया और अपनी जेबमें वह तीन रूबलका नोट लेकर, सबेरेके नाश्तेके बाद, अपनी लाठी थामे गाँवकी ओर चल पड़ा। उसने सोचा कि पाँच रूबल वह गाँववालोंसे वसूल कर लेगा और उसमें अपने पासके तीन रूबल मिलाकर वह कोटके लिये भेड़की खाल ख़रीद लेगा।

गाँवमें पहुँचने पर वह मोची एक किसानके पास गया। वह किसान अपने घरमें नहीं था। उसकी स्त्रीने वादा किया कि इस हफ़्तेके अन्दर-अन्दर वह अपने पतिको पैसे लेकर उसके यहाँ भेज देगी; पर उसने उस समय मोचीको कुछ नहीं दिया। तब वह एक दूसरे किसानके पास गया। उसने धर्मकी सौगन्ध खाकर कहा कि उसके पास पैसा नहीं है, और उसने थोड़ेसे चमड़ेकी गठाईके कामके लिये उसे सिर्फ़ २० कॉपेक दिये। तब मोचीने विचार किया कि चलो वह अपनी भेड़की खाल उधार ही ख़रीद लेगा; पर चमड़ा कमानेवाला उधार देनेको तैयार नहीं था।

"पहले जाकर पैसा ले आओ" उस चमड़ेके व्यापारीने कहा, "फिर जो चाहो चीज़ उठा ले जाना। मैं जानता हूँ कि लेनदारको अपने क़र्ज़दारोंके पीछे कैसे दौड़े फ़िरना पड़ता है।"

नतीजा यह हुआ कि उस मोचीको ख़ाली हाथों लौट आना पड़ा। सिर्फ़ उसे कुछ थोड़ेसे कामके बदले बीस कॉपेक मिले थे और एक दूसरे किसानसे तलवे लगानेके लिये एक बूट-जोड़ा मिल गया था।

अपनी इस निराशासे क्षुब्ध होकर उस मोचीने उन बीसों कॉपेकोंकी शराब पी डाली और बिना भेड़की खाल लिये ही वह घरकी ओर लौट पड़ा। सबेरे तड़के जब चला था तो उसे सरदी लग रही थी; अब इस वक़्त बिना भेड़के चमड़ेके भी वह गर्मी अनुभव कर रहा था। इस तरह राहके बर्फ़में कंकड़ों पर अपनी लाठी बजाता हुआ, और अपने दूसरे हाथमें वह बूट-जोड़ा झुलाता हुआ अपनी राह

अपने-आपसे बातें करता चला जा रहा था : वह कह रहा था, "बिना भेड़की खाल के भी मेरे शरीरमें गर्मी आ गई है। एक गिलासभर पी लेनेसे नसोंमें खून दौड़ने लग जाता है। फिर भेड़की खालकी ज़रूरत ही क्या है ? अपने सारे दुःख क्लेश भूलकर मैं अपनी राह चला जाता हूँ। बस, यही मेरा तरीक़ा है। और मुझे ज़रूरत ही किस बात की है ? मुझे किसी भेड़की खालकी ज़रूरत नहीं है—और न कभी ज़िन्दगीमें ज़रूरत पड़ने ही वाली है। बस एक ही ख़राबी है कि वह बुढ़िया बक-झक करेगी। और यह तो मेरी बड़ी तौहीन है, सचमुच। मैं तो अपनी हड्डियाँ तक गलाकर काम करता हूँ, और ये कमबख़्त मुझे नाक पकड़कर रगेदते हैं। अच्छा ठहरो, अगर तुम मेरा पैसा नहीं लाकर दोगे, तो मैं तुम्हारी टोपी छीन लूँगा: परमात्माकी सौगन्ध खाकर कहता हूँ, मैं अपना पैसा तुमसे वसूल कर ही लूँगा। और इसका क्या मतलब होता है कि वह मुझे दस-दस कोपेकके दो चिथड़े अड़ाकर पिण्ड छुड़ाना चाहता है; क्या होगा इन बीस कोपेकों का ? बहुत-बहुत तो यही है, कि शराब पी लूँ। वह कहता है कि 'अभी मुझे पैसोंकी तंगी है' सो उसे पैसोंकी तंगी है और मुझे नहीं है ! तुम्हारे पास मकान है, ढोर-चौपाये हैं और भी कुछ साज-सरंजाम है—और मेरे पास तो अपने-आपको छोड़कर और कुछ नहीं है। तुम्हारे पास तो रोटी भी तुम्हारी अपनी है; और मुझे तो वह भी ख़रीदनी पड़ती है—सो वह मैं चाहे जहाँसे ख़रीद सकता हूँ। मुझे तो खाली रोटीके लिये ही हर हफ़्ते तीन रूबल चुका देने पड़ते हैं। जब मैं घर पहुँचूँगा तो रोटी भी चुक गई होगी, और मुझे फिर एक-डेढ़ रूबल ख़र्च करना पड़ेगा। तुम्हें मेरा लेना चुकाना ही पड़ेगा।"

इस तरह अपने-आपसे बातें करता हुआ वह मोची कोनेके उस छोटे गिरजेके नज़दीक पहुँचा, और उस गिरजेके पीछे उसे कुछ सफ़ेद-सा चमकता दिखाई पड़ा। साँझकी धुँध छाई हुई थी; चमार देखता ही रहा, पर उसकी समझमें न आ सका कि चीज़ क्या है ? उसने सोचा कि पहले तो कभी यहाँ कोई पत्थर-वत्थर नहीं था। शायद भई, कोई जानवर हो ? मगर यह तो जानवर जैसा नहीं दिखाई

सिर तो आदमीके सिर जैसा मालूम होता है । लेकिन यह सफ़ेद चीज़ क्या है ? और भला एक आदमी यहाँ क्या करता होगा ?

वह कुछ और नजदीक चला गया, और उसे साफ़ दिखाई पड़ा । बड़े अचरज की बात है—एक आदमी वहाँ बैठा हुआ था, जाने ज़िन्दा था कि मरा हुआ था, मगर बिल्कुल नंगा था; गिरजेके सहारे वह बैठा था और हिल नहीं रहा था । वह मोची काँप उठा । शायद किसीने उसे मार डाला है, और उन हत्यारोंने इसे लूट-खसोटकर यहाँ डाल दिया है । अगर मैं उसके पास जाऊँगा तो शायद मेरा ही नाम आ जाये...

चमार आगे बढ़ गया । जब वह गिरजेके कोनेसे मुड़ा तो वह आदमी उसे वहाँ न दिखाई पड़ा । वह चलता ही चला गया; फिर उसने मुड़कर देखा तो क्या देखता है कि वह आदमी गिरजेका सहारा नहीं लिये है, बल्कि वह तो इधर-उधर टहल रहा है, जैसे किसी चीजकी फ़िराक़में है । मोचीको और भी ज़्यादा डर लगा । क्या मुझे उसके पास जाना चाहिए, या फिर मैं चला ही चलूँ ? कहीं उसके पास जाऊँ, और कुछ घट जाय तो ? कौन कह सकता है कि वह क्या चीज़ है ? यह बुरा ही हुआ जो वह यहाँ आया । मान लो मैं लौटकर उसके पास जाऊँ, और वह मुझपर झपट पड़े और निर्दय भावसे मेरा टेंटुआ मसक दे; और मान लो, न भी मसके, तब भी मुझे उससे काम ही क्या है ?—भला एक नंगे आदमीका होगा भी क्या ? क्या मैं अपने कपड़े उतारकर उसे दे दूँगा ? नहीं, मैं तो अपनी राह जाऊँगा ?

और वह मोची तेज़ीसे कदम बढ़ाने लगा । वह उस गिरजेसे कुछ आगे निकल चुका था कि उसका विवेक जागा ।

वह रुक गया । "भला, तुम भी यह क्या कर रहे हो, सीमियान ?" उसने अपने आपसे कहा, "यहाँ एक आदमी ज़रूरतसे मरा जा रहा है, और तुम एक डरपोक आदमी की तरह गुज़र जाते हो । तो क्या यह मान लिया जाये कि तुम एकाएक धनवान हो गये हो और तुम्हें यह डर है कि वह आदमी तुम्हारा धन चुरा लेगा ? सीमियॉन, बड़ी लज्जा की बात है ?"

सीमियॉन लौट कर, उस आदमी की ओर चल पड़ा।

सीमियॉन उस आदमी के पास गया, और उसकी ओर देखा। अरे, वह तो एक जवान आदमी था! जिसमें स्वास्थ्य की एक प्रफुल्लता थी, उसके शरीर पर एक भी ज़ख़्म नहीं था—सिर्फ वह आदमी बरफ़ के मारे ठिठुर कर भयभीत हो रहा था। वह गिरजे का सहारा लिये वहाँ बैठा था। उसने सीमियॉन की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। लगता था कि जैसे आँखें उघाड़नेकी भी शक्ति उसमें नहीं है। सीमियॉन उसके और भी क़रीब आ गया। तभी वह क्या देखता है कि वह आदमी सीमियॉनके पास आगया। उसने अपना सिर उसकी ओर घुमाया, आँखें खोलीं और सीमियाँनकी ओर देखने लगा। उस आदमीकी उस नजरसे सीमियांनके चित्तमें प्रेम उमड़ आया। उसने अपने हाथके वे फेल्टके बूट धरतीपर फेंक दिये, अपना कमर-पट्टा उतारकर बूटोंपर डाल दिया और अपना चोगा उतारने लगा।

"लो भाई, यह है।" उसने कहा, "और मुझे धन्यवाद मत दो? इसे पहन लो—हाँ, लो यह पहन लो..." सीमियांनने उस आदमीकी भुजाएँ पकड़कर उसे उसके पैरोंपर ले लिया। वह आदमी खड़ा हो गया, और सीमियांनने देखा कि उसका शरीर स्वच्छ और नाजुक था, उसके हाथ-पैर चँगे थे और उसकी मुखाकृति मधुर और विनम्र थी। सीमियांनने अपना चोगा उस आदमीके कन्धोंपर डाल दिया, पर उस चोगेकी बांहें उसके हाथोंमें नहीं आ रही थीं। सीमियांनकी मददसे किसी तरह वे बांहें उसके हाथोंमें उतारी गईं और वह उस चोगेमें लपेट दिया गया। फिर उसने बटन लगाकर, चोगेका कमर-पट्टा भी कस दिया।

तब सीमियांनने अपनी वह कलंदर टोपी भी उतारकर उस नंगे आदमीके सिर पर रखनी चाही। पर उसे लगा कि उसका खुदका सिर ठंडा हुआ जा रहा है। उसने सोचा मेरा सिर बिल्कुल गंजा है, और इसके सिरपर तो बड़े-बड़े घुंघराले बाल हैं उसने अपनी टोपी वापस पहन ली। इससे अच्छा यही है कि मैं अपने बूट दे दूं।

उसने उस आदमीको नीचे बैठा दिया और उसे अपने फेल्टके बूट पहना दिये।

इस तरह जब उस मोचीने उसे पोशाकसे लैस कर दिया, तो फिर उस आदमीसे कहा—

"अच्छा भई, अब तुम जरा यहाँसे हिलो-डुलो और गर्म हो जाओ। बात जो भी होगी, हमारे बावजूद साफ़ हो जायेगी। अच्छा तो तुम चल सकते हो?"

वह आदमी जरा भी नहीं हिला; वह बड़े स्नेहकी दृष्टिसे सीमियानकी ओर देखने लगा, और उसकी जबानसे एक शब्द भी नहीं निकल सका।

"भाई, कुछ बोलते क्यों नहीं हो? हम यहाँ बैठकर तो जाड़ा नहीं काट सकते। हमें कहीं न कहीं अपने लिये जगह खोज लेनी चाहिये। यह मेरी लाठी लेलो, अगर तुम्हें कमजोरी मालूम हो रही हो, तो अच्छा तो लो, अब जरा जल्दीसे चले चलो।"

और वह आदमी चलने लगा, और बड़े इतमीनानसे चलने लगा: अपने साथी के समान ही तेज चालसे वह चल रहा था।

इस तरह जब वे डग भरते हुए आगे बढ़ रहे थे, तभी सीमियांनने कहा,

"तो कहाँ रहते हो, भाई?"

"मैं इस गाँवमें नहीं रहता"

"हाँ, इस गाँवके लोगोंको तो मैं जानता हूँ। पर इस गिरजेमें तुम कैसे आ गये?

"सो मैं नहीं कह सकता"

"क्या किसीने तुम्हें सताया है?"

"किसीने भी मुझे नहीं सताया है; भगवानने ही मुझे दण्ड दिया है"

"बेशक; सब कुछ भगवान ही तो करता है। मगर फिर भी इस तरह बिना घरके तो नहीं रहा जा सकता है, न! तो तुम अब किस तरफ़ जा रहे हो?"

"मेरे लिये तो सभी जगह बराबर हैं"

सीमियांन बड़ी उलझनमें पड़ गया: यह आदमी कोई आवारा, बदमाश तो नहीं दिखाई देता। बड़ी नम्रतासे यह बोल रहा है, फिर भी अपने बारेमें तो यह कुछ नहीं कहना चाहता। और सीमियांनने सोचा, इस दुनियामें अक्सर ऐसा होता है। फिर उसने उस आदमीसे कहा: "सुनो, मेरे घर चलो, कुछ नहीं तो थोड़ा विश्राम

सीमियान अपने घरकी ओर चला। वह अजनबी आदमी भी उसके साथ क़दम बढ़ाता हुआ चलता ही गया। इस बीच हवा चलने लगी थी और वह सीमियांनके कमीजमें भरी जा रही थी। उसका नशा अब धीरे-धीरे उतर चला था, और उसे सरदी लग रही थी। वह जोर से साँस लेता हुआ, उस हवामें चला-चल रहा था। अपनी स्त्रीके जाकेट को और भी गाढ़तासे अपने शरीर पर चिपटाता हुआ वह सोच रहा था: सो मैंने अपना करतव कर ही डाला है। भेड़ की खाल खरीदने निकला था, मगर बिना चोगेके लौट रहा हूँ, साथमें इस नंगे आदमीको ले आया हूँ। वह बुढ़िया कुछ बहुत खुश तो नहीं होगी! अपनी स्त्रीका ख्याल आते ही सीमियांन बेचैन हो उठा। लेकिन जब उसने उस अजनबी आदमीकी ओर देखा तो उसे ख्याल आया कि, यह आदमी, उस गिरजेके पिछवाड़े उसकी ओर कैसे देख रहा था! और उसका हृदय आनन्दसे ओत-प्रोत हो उठा।

[२]

सीमियांनकी स्त्री जल्दी ही घरके काज-धंधेसे निपट गई थी। उसने आवश्यक लकड़ी काट ली थी, पानी भर लाई थी, बच्चोंको खिला-पिला दिया था, और खुद भी खा-पी लिया था। और अब वह बैठी सोचमें पड़ी थी। वह सोच रही थी—अब रोटी कब तंदूरपर चढ़ा देनी होगी—आज कि कल? अभी एक बड़ा रोटीका टुकड़ा और भी बचा पड़ा था।

अगर सीमियांनने दोपहर गाँवमें कुछ खा लिया होगा, और रातके भोजनके वक़्त वह ज़्यादा नहीं खायेगा, तो रोटी कल तक चल जायेगी।

मेट्रिओनाने अपने हाथके रोटीके लोवेको उलटा-पलटा और सोचा: आज मैं तंदूरपर रोटियाँ नहीं चढ़ाऊँगी। क्योंकि अब कुछ बहुत आटा नहीं बचा है। शुक्रवार तक यह चल जायगा। मेट्रिओनाने रोटी एक ओर रख दी, और अपनी टेबलपर बैठकर अपने पतिकी कमीज दुरुस्त करने लगी। बैठी-बैठी वह सी रही थी और सोच रही थी कि उसके पतिने भेड़की खाल खरीद ली होगी।

इतना ही डर है कि कहीं वह खालका बेपारी उसे ठग न ले। सचमुच, यह मेरा बूढ़ा शौहर बहुत ही भोला है। वह कभी किसीको नहीं ठगता। पर एक बच्चा भी उसे नाक पकड़कर घिसट सकता है। आठ रूबल कुछ कम तो नहीं होता; इतनेमें जरूर एक अच्छी खाल मिल जानी चाहिये। अगर वह कमाई हुई न भी हुई, तब भी वह एक अच्छी खाल हो सकती है। पिछला जाड़ा तो हमने बिना खालके ही काट दिया था। मगर इसीसे फिर हम नदीपर या और कहीं नहीं जा पाते थे। और अगर मेरे शौहर बाहर जाते हैं, तो उन्हें तो सभी कुछ पहनकर जाना पड़ता है। आज भी जब बाहर गये हैं, तो सभी कुछ पहन गये हैं, और मेरे लिये एक चिन्दी भी नहीं बची है। वे जल्दी ही निकल गये थे; अब तो उनके लौटनेका वक्त है। इतना ही है कि मेरी चिड़िया कहीं फंदेमें न फँस गई हो।

यह बात वह सोच ही रही थी कि, दरवाजेकी सीढ़ियोंमें चूं-चपड़ हुई, और एक आदमी अन्दर दाखिल हुआ। मेट्रिओनाने अपनी सूई कमीजमें खोंसकर छोड़ दी, और आगेके हॉलमें चली आई। देखा, दो आदमी चले आ रहे हैं: सीमियॉन, और साथमें उनके एक और आदमी है, जो फेल्टके बूट पहने और उघाड़े सिर है।

मेट्रिओनाने पतिके शरीरसे आ रही ब्राण्डीकी गन्धको फौरन पहचान लिया। उसने सोचा, ठीक ही तो है, मेरा ख्याल सही निकला; जरूर कहीं चक्करमें फँस गये हैं। और जब उसने देखा कि उसके पतिके पास चोगा भी नहीं है, खाली जाकिट पहने हैं, हाथमें कुछ लाया भी नहीं है, और उसने एक शब्द भी नहीं कहा है और शर्माई-सी सूरत लिये खड़ा है, तो मेट्रिओनाका हृदय स्तब्ध हो गया। उसने सोचा, जरूर ही सारे पैसोंकी शराब पी गये हैं। निकलते ही राहपर जो सबसे पहला आवारा मिला, उसीके साथ ये शराबघरमें चले गये हैं, और उसपर तुर्रा यह कि उस आवारेको साथ घर भी ले आये हैं।

मेट्रिओनाने उन्हें कमरेमें आ जाने दिया। वह खुद भी कमरेमें चली आई; आकर देखा कि वह अजनबी व्यक्ति एक दुबला-पतला आदमी है, और उसका और उसके पतिका वह चोगा वह धारण किये हुए है। उस चोगेके नीचे कोई

क़मीज भी नहीं दिखाई पड़ रहा है और न उसके सिरपर टोपी ही है। जैसा वह अन्दर आया था वैसा ही वह खड़ा रह गया; न तो वह हिलने-डुलनेका ही नाम लेता है न आँखें उठाता है। मेट्रिओनाने सोचा जब इसके चेहरेपर इतनी शर्मिन्दगी है तो यह कोई नेक-ईमानदार आदमी नहीं हो सकता।

मेट्रिओनाने एक काली-कठोर नज़रसे उन दोनोंकी ओर देखा, और फिर वह अपने चूल्हेकी ओर चली गई, यह देखनेके ख्यालसे कि ये दोनों भले आदमी अब क्या करते हैं।

सीमियॉनने टोपी उतारकर धर दी, और बेंचपर ऐसे बैठ गया जैसे कुछ हुआ ही नहीं है।

"चलो मेट्रिओना" उसने कहा, "कुछ खाना-वाना तैयार करो"

मेट्रिओना अपने-आपसे ही कुछ गुर्राई-बुद-बुदाई। रंचमात्र भी डिगे बिना वह चूल्हेके पास खड़ी रही। उसने सिर्फ़ क्रमसे पहले एककी ओर देखा फिर दूसरेकी ओर देखा और अपना सिर हिलाया। सीमियॉनने जैसे कुछ देखा ही न हो, ऐसे उस अजनबी आदमीकी पीठपर हाथ रखते हुए कहा—

"भाई, बैठो न" उसने कहा, "अभी हम लोग भोजन करेंगे"

वह अजनबी आदमी बेंचपर बैठ गया।

"अच्छा तो क्या तुमने कुछ पकाया ही नहीं है ?"

मेट्रिओना गुस्सेसे भभक उठी—

"खाना मैंने बनाया है, लेकिन तुम्हारे लिये नहीं। देखती हूँ कि तुम्हारे होश-हवाश ठिकाने नहीं है। भेड़की खाल खरीदने गये थे और अपने अंगका कोट गुमाकर घर आ गये; और तिसपर साथमें किसी राह चलते नंगे आवारेको मेरे घरमें घसीट लाये हो। तुम दारुकुट्टोंके लिये मेरे यहाँ खाना नहीं है"

"अरे चलो भी मेट्रिओना, कैसी मूरखताकी बातें कर रही हो ? पहले तुम्हें यह पूछना चाहिये कि यह आदमी है कौन ?"

"और ये तो बताओ कि तुमने पैसोंका क्या किया है ?"

सीमियाँनने चौगेमें हाथ डालकर एक नोट निकाला और खोलकर दिखाते हुए कहा—

"ये हैं दाम; और टिफिनोवने चुकानेसे इनकार कर दिया। उसने मुझे कल आनेका कहकर टरका दिया है।"

इस पर मेट्रिओनाका क्रोध और भी ज़्यादा भड़क उठा, "तो तुमने भेड़की खाल भी नहीं खरीदी, और यह बचा-खुचा चौगा भी इस भिखमँगेको पहना दिया और उसे मेरे घरमें लिवा लाये"

कहती हुई वह तीन रूबलका नोट लेनेको आगे बढ़ी, जो कि टेबलपर पड़ा हुआ था। उसे लेकर उसने दराजमें रख लिया और कहा—

"मेरे यहाँ खाना-वाना नहीं है; हर किसी नंगे शराबीको मैं खाना नहीं खिला सकती"

"ओरी मेट्रिओना, ऐसी जबान न बोलो। एक आदमी जो बात कह रहा है, उसे पहले अच्छी तरह सुन लो..."

"आहा, यह मूरख शराबी भला क्या ही अच्छी बात करेगा! अरे बुद्धू.., मैं तो जानती थी, इसीसे तो मैं तुमसे ब्याह नहीं करना चाहती थी। माँने मुझे अच्छे-अच्छे कपड़े दिये थे, और तुम उन सबकी शराब पी गये। तुम गाँवमें भेड़की खाल लेने गये थे, और शराब पीकर घर आ गये हो।"

सीमियाँनने अपनी स्त्रीको समझाना चाहा कि उसने सिर्फ़ बीस कॉपेककी शराब पी है। वह उसे बताना चाहता था कि कहाँ यह आदमी उसे एकाएक मिल गया था। पर मेट्रिओना उसे एक भी शब्द नहीं बोलने देती थी; उसकी ज़बान चक्कीके पहियेकी तरह [illegible] वर्षा कर रही थी। वह पिछले दस बरसकी जाने कितनी गड़ी बातें उखाड़कर उसपर बौछार कर रही थी।

मेट्रिओनाकी बातका अन्त ही नहीं आ रहा था। और अन्तमें वह सीमियाँनकी ओर झपटी और उसकी बाहोंको पकड़ लिया: "मेरा जाकिट मुझे दे दो। एक ही जाकिट बचा है मेरे पास, और वही तुम ले जाकर पहने फिरते हो। ओ बदमाश,

वह मुझे दे दो। लानत है तुम पर!"

सीमियॉनने अपनी बाँहें मोड़कर जाकिट निकालनेकी चेष्टा की। उसकी स्त्रीने झपटकर वह जाकिट छीन लेना चाही, इस कशमशकमें जाकिट अपने प्रत्येक टाँकेमेंसे तड़तड़ा उठा। मेट्रिओनाने जाकिटको खींचकर अपने सिरपर डाल लिया, और दरवाजेकी ओर दौड़ी। वह बाहर जाना ही चाहती थी, लेकिन रुक गई। क्रोधके मारे उसका हृदय फटा जा रहा था, फिर भी वह यह जानना चाहती थी कि वह अजनबी आदमी कौन है?

सो रुककर मेट्रिओनाने कहा "अगर यह कोई भला आदमी होता, तो यह नंगा न होता। इसके शरीरपर तो क़मीज तक नहीं है। और अगर तुमने जो किया है वह ठीक ही किया है तो जरा बताओ न इस भले आदमीको कहाँसे पकड़ लाये हो?"

"मगर वही तो मैं कहना चाहता हूँ। मैं रास्तेसे गुजर रहा था और ये महाशय नंगे और बरफ़से ठिठुरे हुए एक गिरजेकी दीवारके सहारे बैठे थे। यह कोई गरमीका मौसम तो है नहीं कि आदमी इस तरह कहीं भी नंगा बैठ सके। भगवानने ही मुझे यहाँ भेज दिया, नहीं तो यह भला आदमी वहीं खत्म हो जाता। अब किया क्या जाय? ऐसा अक्सर हो ही जाता है। मैंने इसे उठाकर कपड़े पहनाये और अपने साथ लिवा लाया। शांत हो जाओ मेट्रिओना। ऐसी बातें करना पाप है। जरा अपनी आखिरी घड़ीका तो विचार करो"

मेट्रिओना झिड़कना चाहती ही थी, कि एकाएक उसकी दृष्टि उस अनजान आदमी पर पड़ी और वह शान्त होगई। वह अजनबी मनुष्य बिलकुल स्तब्ध भावसे वहाँ बैठा था। अभी भी वह वैसा ही उस बेंचके किनारेपर बैठा था, जैसा कि पहले बैठा हुआ था। उसके हाथ उसके घुटनोंपर बँधे हुए और उसका माथा उसकी छातीमें डूबा हुआ था। उसकी आँखें बंद थीं, और उसकी भौंहोंमें बल पड़ रहे थे, जैसे उसे कोई चीज तकलीफ़ दे रही हो। मेट्रिओना एक शब्द भी नहीं बोली।

लेकिन सीमियॉनने कहा: "मेट्रिओना क्या तुम्हारे भीतर भगवान नहीं है?"

मेट्रिओनाने सुना फिर उस अनजान व्यक्तिकी ओर देखा, और उसका हृदय एकाएक हिल उठा। दरवाज़ेसे हटकर वह सीधी अपने चौकेमें चली गई और खाना ले आई। टेबलपर उसने रक़ाबियाँ जमा दीं और उनमें थोड़ा सा शोरबा उड़ेल दिया, और बची-खुची रोटीका आख़िरी टुकड़ा भी लाकर सामने रख दिया।

"लो, खाओ" उसने कहा।

सीमियाँनने अपने अजनबी साथीको पास सरकाया और कहा।' "और पास आ जाओ बन्धु" उसने कहा।

सीमियाँनने रोटीको काटकर शोरबेमें डुबा दिया। और उन दोनोंने खाना शुरू कर दिया। मेट्रिओना टेबलके एक कोनेपर बैठ गई; अपने एक हाथपर सिर धरे वह एकटक उस अजनबी मनुष्यकी ओर देख रही थी।

मेट्रिओना उस अनजान व्यक्तिके प्रति दयासे भर उठी, और वह उसे अच्छा लगने लगा! एकाएक उस व्यक्तिने अपनी भौंहोंकी सिकुड़न दूर कर दी और वह प्रसन्न दिखाई पड़ने लगा। उसने स्थिर दृष्टिसे मेट्रिओनाकी ओर देखा और मुस्करा दिया।

भोजन समाप्त हो गया। मेट्रिओनाने सब सामान समेट लिया और कामसे निबटकर पास आ बैठी। उसने उस अजनबी आदमीसे पूछना शुरू किया—

"भला कहाँके रहनेवाले हो?"

"मैं यहाँका रहनेवाला नहीं हूँ।"

"फिर तुम यहाँ कैसे आये?"

"सो मैं नहीं कह सकता।"

"तुम्हें किसने लूट लिया है?"

"प्रभुने मुझे दण्ड दिया है।"

"तो क्या इस तरह नंगे ही तुम वहाँ लेटे थे?"

"हाँ, ऐसे ही नंगा और ठिठुरता मैं वहाँ पड़ा था। तभी सीमियाँनने मुझे देखा; उन्हें मुझपर दया आ गई। सो इन्होंने अपना चोगा उतारकर मुझे पहना दिया

और अपने घर चलनेको कहा और यहाँ तुमने यह दया दिखाई है।
और यह खाना-पीना दिया है। प्रभु तुम्हें इसका सुफल दें"

मेट्रिओना उठी, और खिड़कीपरसे सीमियॉनकी वह क़मीज उतार लाई जिसे वह दुरुस्त कर रही थी और लाकर उसे उस अजनबी आदमीको दे दिया। एक पैजामा भी खोज लाकर उसने उस आदमीको दे दिया।

"भला तुम्हारे पास तो क़मीज़ भी नहीं है, यह पहन लो और जहाँ तुम्हारा जी चाहे सो जाओ। चाहे तो उस बेंचपर लेट जाओ या फिर चौकेपर सो जाओ।"
मेट्रिओनाने दिया बुझा दिया, चोगा लिया और चुपचाप अपने पतिके पास सरक आई।

मेट्रिओनाने अपनेको चोगेके एक छोरसे ढाँक लिया, लेकिन वह जागती ही लेटी थी। वह उस अजनबी आदमीको अपने दिमागपरसे न हटा सकी।

जब उसे ख़्याल आया कि रोटीका आखिरी टुकड़ा भी चुक गया है, और कल के लिये अब एक टुकड़ा भी नहीं बचा है,और उसे यह भी सोच हो आया कि उसने अपना कमीज़ और पाजामा भी दे दिया है तो वह बेचैन हो उठी। लेकिन जब उसे यह ध्यान आया कि कैसे उस अनजान आदमीने मुस्करा दिया था, तो उसका हृदय आनन्दसे नाच उठा।

बड़ी देर तक मेट्रिओना जागती पड़ी रही और उसे यह भी प्रतीत हुआ कि सीमियान भी अभी सो नहीं सका है और वह उस चोगेको अपनी ओर खींच रहा है।

"सीमियॉन"

"हाँ?"

"हम लोग रोटीका आखिरी टुकड़ा तक खा चुके हैं,और मैंने चूल्हे पर दूसरी रोटी भी नहीं चढ़ाई है। पता नहीं, कल क्या होगा? शायद पड़ौसकी बुढ़ियासे ही कुछ लाना होगा"

"अगर हम जिन्दा हैं, तो कुछ न कुछ खानेको मिलेगा ही।"

वह वैसी ही चुपचाप लेट गई और बोली कुछ नहीं।

"जो भी हो, मगर आदमी तो यह नेक मालूम होता है। लेकिन यह सचमुच

बड़ी अजीब बात है कि अपने बारेमें वह कुछ बताता नहीं है।"

"शायद उसे बताना चाहिये भी नहीं।"

"सीमियॉन!"

"हाँ?"

"हम तो दूसरोंको देते हैं, पर हमें कोई क्यों कुछ नहीं देता?"

सीमियॉनको न समझ आया कि इसका क्या जवाब दे। "अच्छा अब तुम अपनी बातचीत बंद कर दो......" उसने कहा। वह लुढक गया और उसे नींद आ गई।

[३]

अगले दिन सवेरे सीमियॉन जागा। बच्चे सोये हुये थे; उसकी स्त्री पड़ौसमें कहीं रोटी बटोर लाने चली गई थी। सिर्फ़ कलका वह अनजान मनुष्य पुरानी क़मीज़ पाजामा पहने बेंचपर बैठा था, और ऊपर की ओर नज़र उठाये था। उसका चेहरा कलकी बनिस्बत आज ज्यादा चमक रहा था।

सीमियॉनने कहा, "बन्धु, सुनो, यह शरीर अन्न मँगाता है और हमारे उघाड़े अंग कपड़ा माँगते हैं। और हर आदमीको खाना तो चाहिए ही। तो तुम क्या काम कर सकते हो?"

"मैं कुछ भी कर सकता हूँ"

सीमियॉन अचरजमें पड़ गया और बोला: "अगर आदमी चाहे तो कुछ भी सीख सकता है।"

"इतने मनुष्य काम करते हैं; तो मैं भी काम करूँगा"

"मैं तुम्हें किस नामसे पुकारूँ भला?"

"माइकेल"

"अच्छी बात है, माइकेल। तुम अपने बारेमें अगर कुछ नहीं बताना चाहते, तो मत बताओ। लेकिन हर आदमीको खाना तो चाहिये ही न? तो तुम जैसा बताता हूँ काम करना, और मैं तुम्हें कुछ खानेको दूँगा।

"भगवान तुम्हारा भला करे। हाँ मैं सीख सकता हूँ। बताओ, मुझे क्या करना होगा"

सीमियाँनने एक डोरा लेकर अपनी उँगलीके चारों ओर लपेट लिया और एक गाँठ दे दी।

"देखो यह कोई बड़े भेदकी बात नहीं है। ध्यानसे देखो ......"

मीचेलने गौर किया, अपनी उँगलीपर उसने भी उस चमारकी तरह डोरा लपेट लिया और गाँठ दे ली।

तब सीमियाँनने उसे बताया कि जूतेका किनारा कैसे बनाया जाता है। वह भी मीचेलने तुरंत समझ लिया। तब बालोंको बुनने और टाँचा इस्तेमाल करने की तरकीब भी उसने मीचेलको बता दी। वह सब मीचेलने तुरन्त सीख लिया।

सीमियाँनने जो भी काम उसे सिखाया, मॉचेलने वह फौरन ही सीख लिया और तीन दिनके बाद ही वह इस तरह काम करने लगा गोया कि उसने अपनी तमाम ज़िन्दगी जूते सीते हुए ही गुजारी हो। अपने स्थानसे जरा भी हिले-डुले बिना वह बराबर अपने काममें लगा रहता और बहुत थोड़ा-सा खाना खाता। और कभी कोई काम न होतातो उस समय वह ऊपरकी ओर दृष्टि उठाये देखा करता। वह अपने कमरेसे बाहर कभी न जाता, एक भी अनावश्यक शब्द न बोलता, न मज़ाक ही करता और न हँसता।

सिर्फ़ एक बार उन लोगोंने उसे हँसते हुये देखा था; यह उस पहली संध्याकी बात है, जब उस स्त्रीने उसके लिये खाना जुटाया था।

[४]

दिनके बाद दिन और हफ़्तेके बाद हफ़्ते गुजरने लगे; इस तरह एक पूरा साल ही गुजर गया। और मीचेल सीमियानके घरमें रहकर उसी तरह काम किया करता था।

सीमियानके कारीगरकी ख्याति चारों ओर फैल गई। [illegible] कहना

सीमियानका कारीगर मीचेल जैसे सुन्दर और मजबूत जूते बनाता है, वैसे तो कोई नहीं बनाता ।

दूर-दूरके लोग सीमियानके यहाँ बूटोंके आर्डर देने को आने लगे, और सीमियान का धंधा दिनपर दिन तरक्की करने लगा ।

तभी जाड़ेकी ऋतुमें, एक दिनकी बात : सीमियान और मीचेल कामपर बैठे हुए थे तभी एक तीन घोड़ोंकी जोड़ी टम-टम, घंटियाँ बजाती हुई सीमियानके द्वारपर आई । उन लोगोंने उठकर खिड़कीसे झाँका । वह गाड़ी रुकी; ऊपरकी सीटपरसे एक नौजवान कूद पड़ा और उसने गाड़ीका दरवाजा खोला । बालदार कोट पहने एक भद्र पुरुष उसमेंसे उतर आये । गाड़ीसे उतरकर वे सीमियानके झोंपड़ेकी ओर आये और सीढ़ियाँ चढ़ने लगे ।—मेट्रिओना स्वागत करनेको दौड़ी और उसने दरवाजा अच्छी तरहसे खोल दिया । वे भद्र पुरुष झुककर दरवाजेमें दाखिल हुए और कमरेमें आकर फिर सीधे हो गये । उनका सिर क़रीब क़रीब छतको छू रहा था, और कमरेका यह कोना उनके शरीर भर गया था ।

वह आदमी एक बण्डल लेकर वापस आया। उस भद्र पुरुषने वह बण्डल लेकर टेबल पर रख दिया।

"खोलो इसे" उसने कहा। उसके आदमीने उसे खोल दिया।

उस भद्र पुरुषने एक उँगलीसे चमड़ेको स्पर्श करते हुए सीमियानसे कहा,

"तो सुनो, कारीगर, यह चमड़ा देखा तुमने ?"

"हाँ देखा, श्रीमान्" उसने कहा।

"और तुम यह भी जानते हो कि यह किस क़िस्मका चमड़ा है ?"

सीमियानने उस चमड़े पर हाथ फेरकर देखा और कहा, "यह तो बड़ा ही अद्भुत चमड़ा है।"

"हाँ, मेरा भी ऐसा ख़्याल है !"

अबे गँवार, यक़ीनन ऐसा चमड़ा तुमने पहले कभी नहीं देखा है। यह जर्मन चमड़ा है, और इसकी क़ीमत बीस रूबल है।"

सीमियानके अचरजकी सीमा न रही। वह बोला: "भला मुझ जैसा आदमी कहाँ ऐसा चमड़ा देखता ?"

"बेशक नहीं देख सकते थे ! क्या इस चमड़ेमेंसे मेरे पैरोंका जूता बना सकते हो !"

"हाँ, क्यों नहीं श्रीमान्"

इस बातको सुनकर वह भद्र पुरुष चिल्ला उठा: "तुम्हारे लिये बात करना आसान है। ध्यान रखना तुम किसके लिये काम कर रहे हो, और यह चमड़ा किस क़िस्मका है। मुझे एक ऐसा बूट-जोड़ा बनाकर दो, जो एक साल चल सके और इस बीच कहींसे फटने या घिसने न पाये। अगर बना सकते हो तो चमड़ेको काट डालो; अगर नहीं बना सकते हो तो चमड़ेको काटनेकी ज़रूरत नहीं; मुझे ऐसे ही वापस लौटा दो। और मैं तुम्हें यह अच्छी तरह बता देना चाहता हूँ कि एक सालके पहले अगर जोड़ा कहींसे फट गया या घिस-पिस गया तो मैं तुम्हें जेलमें डलवा दूँगा। और अगर बूट सही-सलामत रहते हैं, तो मैं तुम्हें दस रूबल मज़दूरी दूँगा !"

सीमियान भौंचक्का हो गया। वह नहीं समझ पा रहा था कि उसे क्या कहना चाहिए। उसने मीचेलकी ओर देखा।

उसने उसे कुहनीसे झटका दिया और धीमी आवाज़में पूछा: "क्या यह काम ले लिया जाय?"

मीचेलने सिर हिला दिया, 'हाँ हाँ—और काम को ले लो।'

सीमियानने अपने कारीगरका कहना मान लिया, और बूट बनाना स्वीकार कर लिया।

उस भद्र पुरुषने अपने आदमीसे अपने बायें पैरका बूट उतारनेको कहा। और उसने अपना पैर फैला दिया।

"मेरा नाप ले लो"

सीमियानने एक बाईस इंच लम्बी कागज़की चिन्दी ली, और घुटनोंके बल बैठ गया। अपने अंगोछे उसने अपना हाथ अच्छी तरह पोंछ लिया ताकि उस भद्रपुरुषके मोज़े गन्दे न हो जायँ और नाप लेने लगा। पहले तो सीमियानने तलवेका नाप लिया, फिर उसने पंजेका नाप लिया। तब उसने उसकी पिंडली नापना चाहा; उसका कागज़ पर्याप्त लम्बा नहीं था। उस भारी भरकम पैरकी पिंडली भी एक बड़े शहतीरसे कम नहीं थी।

"देखो, अच्छी तरह ख़याल पहुँचा लेना। जोड़ा तंग नहीं होना चाहिए"

सीमियानने उस कागज़की चिन्दीमें एक और चिन्दी सीकर जोड़ ली। वह भद्र पुरुष वहाँ बैठा, अपने मोजोंमें पैरके अँगूठे हिलाता हुआ, कमरेमें उपस्थित अन्य लोगोंकी ओर देख रहा था। तब उसकी दृष्टि मीचेलपर पड़ी।

"वह कौन है" उसने पूछा, "वह आदमी जो वहाँ बैठा है?"

"वही मेरा उस्ताद कारीगर है; वही इन बूटोंका काम भी करेगा"

भद्र पुरुषने मीचेलकी ओर देखकर कहा, "देखोजी, अच्छी तरह ख़याल पहुँचा लेना कि जोड़ा एक सालके पहले खराब नहीं होना चाहिए"

सीमियानने भी मीचेलकी ओर देखा, पर मीचेलने तो उस भद्र पुरुषकी ओर

आँख उठाकर भी नहीं देखा। वह उस भद्र पुरुषके पीछे ही एक कोनेमें खड़ा था, और कुछ ऐसा आभास होता था जैसे वह किसीकी ओर टकटकी लगाये देख रहा हो। मीचेल स्थिर दृष्टिसे ताक रहा था; एकाएक वह मुस्कराया, और उसका सारा चेहरा चमक उठा।

"अरे वहाँ खड़े किसकी ओर दाँत निपोर रहे हो, गँवार······? ज़रा अच्छी तरह समझ लो पहले, कि जोड़ा वक़्पर तैयार हो जाना चाहिये"

और मीचेलने जवाब दिया: "ठीक वक़्तपर जोड़ा तैयार हो जायगा"

"मैं उम्मीद तो यही करता हूँ?"

उस भद्रपुरुषने फिर अपने बूट पहन लिये और अपनेको अपने बालदार कोटमें ढापकर वह दरवाज़ेकी ओर बढ़ गया। लेकिन उसे नीचे झुकनेका ख़्याल नहीं रहा, सो उसका सिर दरवाज़ेके ऊपरके चौखटसे टकरा गया।

उसने कुछ भला-बुरा बड़बड़ाया और सिरपर हाथ फेरता हुआ वह अपनी गाड़ीमें बैठकर चल दिया।

उस भद्रपुरुषके चले जानेपर सीमियानने कहा, "बड़ा फ़ौलादी आदमी है। दुनियामें शायद वह डंडा अभी बना ही नहीं है, जो इसे मार सके। यह तो अपने सिरके बल शहतीरों तकको नीचे उतार लेता है, और तब भी इसे मुश्किलसे ही चोट लगती है"

लेकिन मेट्रिओनाने कहा; "जैसी ज़िन्दगी भला ये बसर करते हैं, उसमें वे लोग क्यों न इतने मज़बूत होंगे? एक बार तो शायद मौत भी उसकी अस्थि-कायाको नहीं छू सकती"

[५]

और सीमियानने मीचेलसे कहा: "देखो भई, यह काम तो हमने सिरपर उठा ही लिया है; मगर यह कहीं हमारी जानपर न आ जावे। यह चमड़ा क़ीमती है और इस भद्र पुरुषके साथ मज़ाक़ नहीं किया जा सकता। चमड़ा ग़लत नहीं काटना चाहिये। तुम्हें ही यह सब करना होगा—क्योंकि तुम्हारी दृष्टि ज़्यादा सूक्ष्म है

और तुम्हारा हाथ भी मुझसे ज्यादा सुघर है; जो यह बनावटका नमूना है। तुम चमड़ा काटो तब तक मैं आगेके अँगूठोंकी टोपियाँ बनाता हूँ"

मीचेलने अपने मालिकके आदेशानुसार काम करना शुरू कर दिया। उसने वह चमड़ा लेकर टेबलपर फैला दिया; एक टुकड़ेको दूसरे टुकड़ेपर रखकर वह उसे छुरीसे काटने लगा।

मेट्रिओना देखनेके लिये पास आई। उसने देखा कि मीचेल कैंचीसे काम ले रहा है, और यह सब देखकर वह बड़ी परेशानीमें पड़ गई। मेट्रिओना जूते बनानेका काम जानती थी; वह गौरसे देख रही थी कि मीचेल चमड़ेको एक शीर्षके ढंगसे नहीं काट रहा था, बल्कि वह तो उसे किनारे-किनारेसे कैंचीसे''तराश रहा था।

मेट्रिओना कुछ कहना ही चाहती थी। लेकिन तभी उसे ख्याल आगया कि शायद वह नहीं जानती हो कि एक भद्र पुरुषके जोड़े बनानेका क्या तरीका होता है। मुमकिन है मीचेल उस बातको ज्यादा अच्छी तरह जानता हो; "मैं उसमें दखल नहीं दूँगी।"

मीचेलने जोड़ा काट लिया। तब वह एक डोरा लेकर सीने लगा; वह दोहरे डोरेसे नहीं सी रहा था, जैसा कि आमतौरपर मोची लोग सीते हैं। इकहरे डोरेसे जिस तरह मरे हुये आदमीके साथ गाड़नेके लिये जूता सिया जाता है, वैसे ही वह इस जूतेको भी सी रहा था।

यह देख कर भी मेट्रियोना बड़ी हैरतमें पड़ गई; लेकिन फिर भी उसने उसके काममें दखल देना नहीं चाहा। और मीचेल सीता चला गया। रातको उन लोगोंने भोजन किया, उसके उपरान्त सीमियाँन उठ खड़ा हुआ और वह क्या देखता है कि मीचेल ने उस भद्र-पुरुषके चमड़े से मृत मनुष्यके साथ क़ब्रमें गाड़नेका जूता बना दिया है।

सीमियाँन बड़े जोरों से हाय-हाय कर उठा। "अरे यह क्या हो गया ?" वह सोच में पड़ गया था। एक साल का गुजर अर्सा गया, मीचेल उसके साथ रहा है, और

आज तक उसने कोई गलती नहीं की है। और आज तो उसने सर्वनाश ही कर डाला है। उस भद्र पुरुषने बखियों वाले तलेका नोकदार जोड़ा बनने का ऑर्डर दिया था और मीचेलने यह बिना तलवेका, शव को पहनानेका जोड़ा बनाकर चमड़े का नाश कर दिया है। अब उस भद्र पुरुषको कैसे शांत किया जा सकेगा? और इस क़िस्मका दूसरा चमड़ा पा लेना भी आसान बात नहीं है।

उसने कहा, "अरे भाई, यह क्या कर डाला तुमने? तुमने तो मेरी जान ही आफ़त में डाल दी? उस भद्र-पुरुषने तो बूटों का ऑर्डर दिया था. और तुमने यह क्या बनाकर रख दिया?"

मालिकने अभी मीचेलको झिड़कना शुरू किया ही था कि तभी दरवाज़ेपर किसीके खट-खटाने की आवाज़ सुनाई पड़ी : खट-खट, खट-खट। उन लोगोंने उठकर खिड़की पर से देखा। एक घुड़सवार वहाँ खड़ा अपने घोड़ेको थप-थपा रहा था। उन लोगोंने दरवाजा खोला, और उस भद्र पुरुषका आदमी अन्दर आया।

"नमस्कार"

"नमस्कार। क्या ख़बर है भाई?"

"मालकिनने मुझे बूटों के लिये भेजा है।"

"क्यों क्या बात हुई बूटोंकी?"

"बूटोंकी क्या ख़बर होती। मालिकको बूटकी ज़रूरत नहीं है। उन्होंने तुम्हारे दीर्घ जीवनकी कामना की है।"

"यह क्या कह रहे हो, भला?"

"यहाँ से लौटकर वे ज़िन्दा घर नहीं पहुँच सके; गाड़ी में ही वे मर गये। जब गाड़ी उनके मकानके आगे जाकर खड़ी हुई और उन्हें उतारनेके लिए जब मैंने दरवाज़ा खोला तो वे सफ़ेद झक होकर वहाँ पड़े हुये थे; वे मर चुके थे और उनका शरीर एकदम सख़्त पड़ गया था। बड़ी मुश्किलसे हमने उन्हें गाड़ीसे बाहर निकाला। इसीसे मालकिनने मुझे यहाँ भेजा है। उन्होंने कहा है कि, 'मोचीसे यह बात कह देना कि वह जो भद्र आदमी तुम्हें बूट बनाने के लिए चमड़ा दे गया था, उसे

अब बूटोंकी जरूरत नहीं है। अब वह तुरन्त उस चमड़ेसे मृत आदमी के लिए जूते तैयार कर दे। और जब तक वह जोड़ा बनाये तुम वहीं ठहरे रहना, और बन जाने पर जोड़ा लेकर आ जाना' इसीसे मैं यहाँ आया हूँ।"

मीचेलने टेबल परसे बचे हुए चमड़ेके टुकड़े उठाकर उनकी घड़ी कर डाली। शबके तैयार जूतोंको परस्पर बजाकर, उन्हें अपने अँगेसे पोंछकर उस आदमीके हाथ सौंप दिया। वह आदमी मृत मनुष्यका वह जोड़ा लेकर चल पड़ा—

"अच्छा बिदा लेता हूँ भाई, नमस्कार"

[६]

एक बरस गुजरा, दूसरा बरस गुजरा, और यों बातकी बात में मीचेलको सीमियाँनके घरमें रहते--रहते छः बरस निकल गये। उसका जीवन ठीक पहले जैसा ही चल रहा था। वह कहीं भी आता-जाता नहीं था। एक भी अनावश्यक शब्द नहीं बोलता था, और इन सारे बरसोंमें वह केवल दो ही बार मुस्कराया था। एक बार वह तब मुस्कराया था जब उस पहली रात मेट्रिओनाने उसे खाना दिया था, और दूसरी बार वह मुस्कराया था उस दिन, जिस दिन वह भद्र पुरुष आया था। सीमियाँन अपने इस मुसाफिर साथीसे अत्यन्त सन्तुष्ट था। उसने फिर कभी उससे यह सवाल नहीं किया कि वह कहाँ से आया है; उसे सिर्फ डर इस बातका लगा रहता था कि किसी दिन मीचेल उसे छोड़ कर चला न जाये।

एक दिनकी बात है कि वे सब लोग अपने घरमें बैठे हुए थे। गृहिणीने अपना लोहेका बर्तन आगपर चढ़ा दिया था। बच्चे बेंचोंके आस-पास दौड़-धूप कर रहे थे, और खिड़कीसे बाहर झाँक रहे थे। सीमियाँन एक खिड़कीके पास बैठा हुआ अपना हथौड़ा चला रहा था, और मीचेल दूसरी खिड़कीके पास बैठा एक एड़ी बना रहा था।

एक छोटा बच्चा बेंचकी ओरसे दौड़कर मीचेलके पास आया और उसके कन्धे झुककर खिड़कीसे बाहर झाँकने लगा।

"मीचेल चाचा, देखो न! क्या वह बनियेकी स्त्री लड़कियोंको लिये यहीं आ

ही है ? और उसमेंसे वह एक लड़की तो लंगडी है।"

उस छोटे लड़केने यह बात कही ही थी कि मीचेलने अपने हाथ का काम छोड़ दिया, खिड़कीकी ओर मुड़ गया और सड़ककी ओर झाँकने लगा।

सीमियान आश्चर्यमें पड़ गया। मीचेलने कभी सड़ककी ओर नहीं देखा था, लेकिन आज वह विवश था कि खिड़कीसे बाहर कुछ देखनेके लिए झाँके तब सीमियान भी खिड़कीपर आ गया : सचमुच एक स्त्री उसके घरकी ओर आ रही थी। वह सुन्दर पोशाक पहने हुये थी, और अपने दोनों हाथोंमें दो बालिकाओंके हाथ झाले हुये थी; वे दोनों बच्चियाँ छोटे २ बालदार कोट और बेल-बूटोंके कामके रुमाल से सुसज्जित थीं। दोनों बालिकाएँ एक मूँगकी दो फाड़की तरह बिल्कुल यकसाँ थी, और उन्हें अलग-अलग कहना जैसे मुश्किल हो जाता था। पर उनमेंसे एक बालिकाका बायाँ पैर लँगड़ा था, और इसलिये जब वह चलती थी तो फुद-कती हुई चलती थी।

सामनेकी सीढ़ियोंसे वह स्त्री हालमें आ गई और दरवाज़ेके पास आकर उसने चटखनी दबाई और द्वार खुल गया। उसने लड़कियोंको आगे कर दिया और आप उनके पीछे-पीछे चला।

"नमस्कार कारीगरजी, नमस्कार गृहिणी"

"आइये-आइये। भला आपकी क्या सेवा की जाये ?"

वह स्त्री टेबलके पास बैठ गई। वे बालिकाएँ उसके पास आकर चिपट गईं, क्योंकि उन अजनबी लोगोंको देखकर उन्हें डर लग रहा था।

"इन बच्चियोंके लिये, वसंत ऋतुमें पहननेके कामकी कोई बूट-जोड़ियाँ चाहिये।"

"बखुशी, जरूर लीजिये, अब तक ऐसी छोटी जोड़ियाँ हमने बनाई तो नहीं है, पर हम बहुत बढ़िया बना देंगे। सिरेवाली चाहती हैं आप, या बिना सिरेकी ? जैसी भी चाहेंगी, बन जायेंगी। मीचेल कैसा भी बना सकता है।"

सीमियानने मीचेलकी ओर देखा तो पाया कि उसने अपना काम एक ओर

डाल दिया है, और टकटकी लगाये वह उन लड़कियोंकी ओर ताक रहा है ।

सीमियान मीचेलको क़तई न समझ सका । यह सच है कि वे बालिकाएँ सुन्दर थीं: छोटी-छोटी काली आँखें, गोल-गोल लाल गाल, छोटे-छोटे बालदार कोट और उनपर रूमालोंसे वे सजी थीं । पर सीमियानको नहीं समझमें आ रहा था कि क्यों मीचेल ऐसी स्थिर दृष्टिसे उन लड़कियोंको ताक रहा था, मानो कि वह उन्हें पहचानता हो ।

सीमियान उलझनमें पड़ गया, आखिर वह उस स्त्रीके साथ सौदा तय करने लगा । तय हो जानेपर उसने नाप ले लिया । उस स्त्रीने अपनी लँगड़ी बच्चीको गोदपर उठा लिया और कहा:

"इस बच्चीका नाप दो बार लेना होगा, इसके बाँयें पैरके लिये एक जूता बनाना होगा, और सीधे पैरके लिये तीन जूते बनाने होंगे । इन दोनों बच्चियोंके पैर एकदम बराबर हैं; क्योंकि ये दोनों एक साथकी पैदायश हैं"

सीमियान नाप लेने लगा और उस लँगड़ी बच्चीकी ओर एक नज़र डालता हुआ बोला, "इस बच्चीका पैर कैसे खराब हो गया ? भला बताओ तो कैसी प्यारी सलौनी बच्ची है ! तो क्या यह पैर जन्मसे ही ऐसा है ?"

"नहीं, इसकी माँने इसे कुचल दिया था"

तभी मेट्रिओना वहाँ आ पहुँची । वह जानना चाहती थी कि वह स्त्री कौन है, और वे बच्चियाँ किसकी हैं । इसीसे उसने पूछा— क्या आप इनकी माँ नहीं हैं ?"

न तो मैं इनकी माँ ही हूँ और न इनकी कोई रिश्तेदारिन हूँ । गृहिणी, ये तो सिर्फ़ मेरे पाले हुये बच्चे हैं"

"आपके बच्चे नहीं हैं फिर भी आप इन्हें इतना प्यार करती हैं ?"

"क्यों न करूँगी भला, जबकि न दोनों हीको मैंने अपनी छातीका दूधपिला-कर पाला है ? एक मेरा अपना ही बच्चा था और उसे भगवानने ले लिया; पर मैंने कभी उसे इतना प्यार नहीं किया जितना कि इन दोनोंको करती हूँ"

"और ये किसके बच्चे हैं ?"

[७]

वह स्त्री बातमें हिलग गई और उसने समझाया: "छह बरस पहलेकी बात है जब कि कुल एक ही सप्ताहके भीतर-भीतर ये बच्चे अनाथ हो गये थे। इनके पिताको मंगलवारके दिन दफ़नाया गया था और उसके अगले ही शुक्रवारको इनकी माँ भी मर गई।

"मैं और मेरे पति तब किसान थे। गाँवमें तब हम लोग उनके पड़ौसी थे; हमारे मकान बिल्कुल लगे हुये थे। इन बच्चोंका पिता जंगलमें काम करता था। एक दिन एक झाड़ उसपर आगिरा; वह सीधा उसके पूरे शरीरपर आकर गिरा था सो उसके पेटकी थैलियाँ बाहर निकल आयीं।

"मुश्किलसे घर लाही पाये थे कि उसने देह त्याग दिया। और उसी सप्ताहमें उसकी स्त्रीने इन युगल-बालिकाओंको जन्म दिया। अपनी उस आवश्यकताकी घड़ी में वह निपट अकेली थी और अकेली ही वह मर गई।

"अगले ही दिन मैं अपनी पड़ौसिनसे मिलने उसके घर गई। जब मैं कमरे में पहुँची तो क्या देखती हूँ कि वह भली मानस तो बिल्कुल ठंडी और अकड़ी हुई पड़ी थी, और अपनी मरण-पीड़ामें छटपटाती हुई वह अपनी एक छोटी बच्चीके ऊपर आ पड़ी थी और उसे बिल्कुल कुचल डाला था तथा उसके एक पैरको तोड़-मरोड़ दिया था।

"तभी कुछ और भी लोग वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने उस स्त्रीको नहलाया, कपड़े पहनाये, कफ़न तैयार किया और जाकर गाड़ आये। उन भले आदमियोंने सब काम बड़ी चिन्तापूर्वक कर दिया। अब ये छोटी बच्चियाँ निपट अकेली रह गई थीं; उनका क्या हो? आसपासकी औरतोंमें मैं ही एक ऐसी थी, जिसके एक बच्चा दूध पी रहा था। मैं अपने दो महीनेके सबसे पहले बालककी परवरिश कर रही थी।

इसीसे तुरंत तत्कालके लिये मैंने ही इन बच्चियोंको सम्हाल लिया। सब किसान मिलकर मशविरा करने लगे कि इन बच्चियोंको कहाँ आश्रय दिया जाय? उन लोगोंने कहा, 'मेरिया, फिलहाल तुम्हीं क्यों नहीं इन

बच्चियोंको रख लेती हो ? जल्दी ही सब ठीक हो जायगा। पहले मैंने स्वस्थ बच्चीको दूध पिलाया, और लँगड़ी बच्चीको मैंने नहीं धवाया। मैंने सोचा कि शायद यह ज़्यादा जी नहीं सकेगी, लेकिन फिर मैंने सोचा, भला क्यों ऐसी छोटी, प्यारीसी ऐंजिलको मरने दूँगी ? मेरे मन में उसके लिये बड़ा दुःख हुआ, और मैं उसे भी धवाने लगी। अपने बच्चेके साथही साथ मैं इन दो बच्चों को भी पालने लगी; मेरी इसी एक छातीका दूध पी कर ये तीनों बड़े हुए हैं। तब मेरी जवान उम्र थी और मैं शरीरसे काफ़ी मज़बूत थी, और बच्चोंको पर्याप्त पोषण दे सकती थी। भगवानने मुझे इतना दूध दे दिया था कि वह मेरे लिये आवश्यकता से अधिक ही था। अक्सर ऐसा होता था कि जब तक मैं दो बच्चोंको संतुष्ट कर देती, तब तक तीसरा इन्तजार करता रहता। और दो को पूरी तरह तृप्त कर देने के बाद मैं तुरन्त तीसरेको ले लिया करती। मगर प्रभुकी इच्छा हुई, कि दूसरे बरस मुझे अपने बच्चेको दफ़ना देना पड़ा और इन्हीं दो बच्चियोंकी पर्वरिश मेरे लिये बच रही। और इसके बाद भगवानने मुझे और बच्चे नहीं दिये। मगर हमारी आर्थिक हालत अच्छी होने लगी। अब हम यहाँ एक दूकानदारके साथ मिल में रहते हैं। अच्छी तनखा मिलती है और किसीभी तरहकी फ़िकर-चिन्ता नहीं रह गई है। हमारे कोई और औलाद भी नहीं है। अगर ये बच्चियाँ न होतीं, तो भला मैं अकेली रह भी कैसे सकती थी ? तब मैं क्यों न इन्हें प्यार करूँगी ? यही तो मेरे जीवनका एकमात्र आनन्द है।"

इतना कह कर उसने उस लँगड़ी बच्चीको एक हाथसे छातीसे दाब लिया और अपने दूसरे हाथसे उसके गाल पर आये हुए आँसू पोंछ दिये।

मेट्रीओनाने निःश्वास छोड़ कर कहा "यह मसल सच ही है कि आदमी बिना माँ-बापके रह सकता है, लेकिन बिना भगवानके नहीं रह सकता।"

इस तरह वे लोग जब बातोंमें लगे थे, तभी एकाएक उस कोनेसे, जहाँ मीचेल बैठा था, एक जाज्वल्यमान प्रकाश चमक उठा और सारे कमरे में व्याप्त हो गया। वे सब उसकी ओर देखने लगे। मीचेल अपनी गोदी में हाथ जोड़े बैठा था; उसकी आँखें मुस्कराती हुई ऊपरकी ओर उठी थीं।

[८]

बच्चियोंवाली वह स्त्री जा चुकी थी। तब मीचेल भी अपनी बेंचपर से उठा। उसने अपना अंगा उतार दिया, अपने मालिक और मालकिनके आगे वह नत हो गया और उसने कहा : "मालिक और गृहिणी, आप दोनों मुझे क्षमा कर देना। भगवान ने भी मुझे क्षमा कर दिया है; आप भी मुझे अवश्य ही क्षमा कर दें।"

और मालिक और मालकिन ने देखा कि प्रकाश मीचेलकी ओर से ही आ रहा था। वह खड़ा हो गया। सीमियाँन मीचेलके आगे अवनत मस्तक हो गया और उससे बोला "मीचेल, देखता हूँ कि तुम कोई साधारण मर्त्य मानव नहीं हो, और शायद मैं अब तुम्हें रख भी न सकूँ, और कोई प्रश्न भी शायद तुमसे न कर सकूँ। पर एक बात मुझे बता दो। मैंने जब तुम्हें पाया और अपने घर लाया तब तुम इतने उदास क्यों रहा करते थे? और जब मेरी स्त्रीने भोजन परोसा, तब तुम क्यों मुस्करा उठे? और क्यों उसी क्षणसे प्रसन्न रहने लगे? और जब वह भद्र पुरुष बूटोंका ऑर्डर देने आया, तब तुम फिर दूसरी बार मुस्कराये, और तब से तुम और भी ज़्यादा प्रसन्न और प्रफुल्लित रहने लगे थे। और आज जब वह स्त्री उन बच्चियोंको लेकर आई तब तुम फिर तीसरी बार मुस्करा उठे और समूचे प्रकाश में नहा उठे। मुझे बताओ न मीचेल, भला ये कैसे होता है कि तुम्हारे भीतर से यह रोशनी निकलती है? और यह तीन बार तुमने क्यों मुस्कराया था?"

और मीचेलने कहा "यह प्रकाश तो इसलिये दिखाई पड़ता है कि पहले प्रभु ने मुझे दण्डित किया था और अब उसने मुझे क्षमा कर दिया है। और तीसरी बार मैं इसलिये मुस्कराया कि मैं प्रभुके तीन वचन समझना चाहता था। मैंने प्रभुके ये वचन अब समझ लिये हैं। पहला वचन मुझे तब समझ में आया जब तुम्हारी स्त्रीने मुझपर दया दिखाई थी, और इसीसे तब मैं पहली बार मुस्कराया था। और दूसरा वचन मुझे तब समझमें आया जब वह धनिक बूटोंका ऑर्डर देने आया था, और इसीसे तब मैं दूसरी बार मुस्कराया था, और अभी जब मैंने इन बालिकाओं को देखा तो मुझे अन्तिम तीसरा वचन भी समझमें आ गया, और मैं

फिर तीसरी बार मुस्करा दिया।"

तब सीमियाँनने कहा, "अच्छा मीचेल मुझे यह बताओ, तुम्हें भगवानने दण्ड क्यों दिया था और प्रभुके वे तीन वचन कौनसे हैं, ताकि मैं भी उन्हें जान सकूँ?"

और मीचेलने कहा, "प्रभुने मुझे इसलिये दण्ड दिया था कि मैंने उसकी आज्ञा भंग की थी। मैं स्वर्गमें एक देवदूत था और वहाँ मैंने प्रभुकी आज्ञा भंग की थी।

"मैं स्वर्ग में देवदूत था; और प्रभु ने मुझे धरती पर एक स्त्रीकी आत्मा को ले आनेके लिये भेजा था। मैं उड़ कर धरती पर आया, और देखता हूँ कि वह स्त्री बीमार पड़ी है, उसके दो जोड़ले बच्चे हुए थे—दो बच्चियाँ थीं, माँ के एक बगल वे बच्चियाँ छटपटा रही थीं पर माँ उन्हें अपनी छातीसे नहीं लगा पा रही थी। उस स्त्रीने मुझे देखा और वह समझ गई कि प्रभुने मुझे उसकी आत्मा निकाल ले जानेको भेजा है। उसने रोकर कहा, ओ प्रभुके फरिश्ते! लोगोंने अभी परसों-तरसों ही मेरे पतिको गाड़ा है। जंगलमें उसपर झाड़ आ गिरा था और वह मर गया। मेरी कोई बहन भी नहीं है, न कोई चाची ही है और न कोई नानी या दादी ही है; मेरे इन अनाथ बच्चोंकी परवरिश करने वाला कोई भी नहीं है। मेरी इस रंकिनी आत्मा को मत ले जाओ, सिर्फ मुझे अपने बच्चोंकी परवरिश करके उन्हें अपने पैरोंपर खड़ा कर लेने दो। माँ-बापके बिना तो भला ये बच्चे जी भी कैसे सकेंगे?" मैंने उस स्त्रीको आश्वस्त कर दिया; उसके एक बच्चेको उसकी छातीपर लिटा दिया और दूसरे बच्चे को उसकी भुजामें थमा दिया और स्वर्गमें प्रभुके पास लौट गया। उड़ कर जब मैं प्रभुके पास पहुँचा तो मैंने उनसे कहा;'मैं उस स्त्रीकी आत्माको नहीं ला सका। बाप एक झाड़ गिरनेसे मर गया था, माँने युगल बच्चियोंको जन्म दिया है और वह अपनी आत्मा न ले जानेके लिए विनती करती है; वह कहती है, "मुझे अपने बच्चोंको दूध पिलाने दो और उन्हें परवरिश करके धरतीपर खड़ा कर लेने दो। बच्चे माँ बापके बिना नहीं जिन्दा रह सकते" 'तब प्रभुने कहाः'फिर जाओ और उस स्त्रीकी आत्माको ले आओ, और तुम्हें तीन वचन समझमें आ जायेंगेः तुम्हें यह समझमें आ जायगा कि मनुष्योंके भीतर क्या है; और मनुष्योंको क्या नहीं दिया

गया है; और मनुष्य किस चीज़के आधारपर जीता है। जब यह तुम्हारी समझमें आ जाये, तभी तुम लौट कर स्वर्गमें आ जाना मैं फिर उड़ता हुआ धरतीपर लौट आया और मैंने उस स्त्रीकी आत्माको निकाल लिया।

"वे बच्चे उसकी छातीसे नीचे गिर पड़े, वह निष्प्राण शरीर भारी होकर पलंग में डूब गया और तभी एक बच्चा उस शरीरके नीचे कुचल गया और उसका एक पैर मुड़ गया। गाँवकी झोपड़ियोंपरसे उड़ता हुआ वह आत्मा लेकर मैं प्रभुके पास लौट रहा था, तभी एक तूफानने मुझे घर दबाया, मेरे पंख निर्बल होकर छिन्न हो गये और वह आत्मा अकेली ही उड़कर प्रभुके पास चली गई। लेकिन मैं धरती पर आ गिरा, और सड़कके एक किनारे पड़ा रह गया।

[११]

अब सीमियॉन और मेट्रिओनाको भली प्रकार मालूम हो गया कि उन्होंने किसे खिलाया-पिलाया और कपड़े-लत्ते पहनाये थे और कौन उनका वह अतिथि था। एक बारगी ही भय और आनन्दसे विह्वल होकर वे रोने लगे। लेकिन उस फरिश्ते ने कहा: मैं उस खेतमें अकेला और नग्न पड़ा हुआ था। मैंने आज तक मनुष्योंकी तकलीफ़ोंको कभी नहीं जाना था; न मैं भूख-प्यास और गरमी-सरदीके दुःखोंको ही जानता था, पर अब तो मैं एक मनुष्य हो गया था। मुझे भूख और सरदी सता रही थी, और नहीं समझ आ रहा था कि क्या करूँ। तभी मुझे उस खेतमें वह प्रभुका छोटा सा मन्दिर दिखाई पड़ा। मैं उस मन्दिरमें शरण पानेके लिए वहाँ गया। मन्दिरमें ताला लगा हुआ था और मैं अन्दर न जा सका। इसीसे हवासे अपनेको बचानेके लिये मन्दिरकी दीवारके सहारे मैं चिपटा हुआ बैठा था। शाम हो गई, मुझे भूख बुरी तरह सताने लगी और सरदीसे मैं अकड़ गया, और मेरे सारे शरीरमें बड़ी पीड़ा होने लगी। तभी मुझे एकाएक आहट सुनाई पड़ी: एक आदमी बूट पहने हुए और अपने-आपसे ही बात करता हुआ रास्तेसे चला आ रहा था। और मैंने अपने स्वरूपके मनुष्य हो जानेके बाद पहली ही बार नश्वर मनुष्यका चेहरा देखा। उस चेहरेको देख कर मैं भयसे त्रस्त हो उठा और मैं मुँह फेर कर दूसरी ओर चला

गया। मैंने उस आदमीको अपने-आपसे बातें करते हुये सुना, कि वह कैसे अपने शरीरको जाड़ेमें बचा सकता है और कैसे वह अपनी स्त्री और बच्चोंके लिये रोटी पका सकता है? तब मैंने सोचा कि मैं तो यहाँ भूख और जाड़ेसे मरा जा रहा हूँ, और यह भला आदमी यही सोचनेमें लगा है कि अपनेको और अपनी स्त्रीको ढाँपनेके लिये भेड़की खाल कहाँ पायेगा और कैसे रोटी जुटायेगा। यह आदमी तो सचमुच ही मेरी मदद नहीं कर सकेगा। उस आदमीने मेरी ओर देखा, वह कुछ गुर्राया और वह और भी अधिक भयंकर हो उठा और वहाँसे चलता बना। मैं घोर निराशा में पड़ गया। एकाएक मैंने फिर उस आदमीको आते हुये सुना। मैंने नजर उठा कर देखा, लेकिन पहचानना मुश्किल हो रहा था कि क्या यह वही आदमी है? पहले उसकी मुखमुद्रामें मौत झलक रही थी, और अब वह एकाएक वह जी उठा था, और उसके चेहरेमें मुझे प्रभुका प्रतिभास हुआ, वह मेरे पास आया, उसने मुझे कपड़े पहनाये और मुझे अपने घर लिवा लाया। मैं उसके घरमें दाखिल हुआ; उसकी स्त्री वहाँ दिखाई पड़ी और वह कुछ बोलने लगी। वह स्त्री तो इस आदमीसे भी अधिक भयानक थी। उसके मुँहसे मौतकी हवा बह रही थी, और मरणकी उस दुर्गन्ध में मुझे साँस लेना दूभर हो गया। वह मुझे उस सरदीकी रातमें बाहर निकाल देना चाहती थी, और मैं जानता था कि यदि उसने ऐसा किया तो वह जिन्दा नहीं रह सकेगी। तब उसके पतिने उसे प्रभुका स्मरण कराया, और तुरंत ही मानो वह एक दूसरी स्त्रीके रूपमें परिणत हो गई। और जब उसने हमें भोजन दिया, और मेरी ओर देखा तब मैंने भी उसकी ओर देखा : मौत वहाँसे जा चुकी थी, वह स्त्री जी उठी थी, और उसके भीतर भी मुझे प्रभुका आभास दिखाई पड़ा।

तभी मुझे प्रभुका पहला वचन याद आया : "तुम्हें जान लेना है कि मनुष्यों के भीतर क्या है, जो जी रहा है। और मेरी समझमें आ गया कि मनुष्योंके भीतर वह प्रेम है, जो जी रहा है। और मेरा हृदय आनन्दसे ओत-प्रोत हो गया; क्योंकि प्रभुने जो मुझे सिखानेका वचन दिया था, उसका प्रकाश मुझे देना उसने आरम्भ कर दिया था; और मैं पहली बार मुस्करा उठा। मगर मेरी समझमें यह नहीं

आ रहा था कि मानवोंको क्या दिया गया है और किस आधारपर वे जीते हैं ?

"पूरे वर्षभर मैं तुम्हारे साथ रहा। तभी वह आदमी आया, जो बूटोंका ऑर्डर दे गया था—ऐसे बूटोंका जिन्हें बिना फटे या घिसे पूरे वर्षभर चलाना है। मैंने उस आदमीकी ओर देखा और उसके कन्धोंके पीछे मुझे अपना साथी दिखाई पड़ा;—वह मौतका फ़रिश्ता था। मेरे सिवाय कोई भी उस फ़रिश्तेको देख न सका था ? मगर मैं उसे पहचानता था, और मैंने तुरंत ही यह जान लिया कि सूर्यास्त होनेके पहले ही उस धनवान आदमीका आत्मा उसमेंसे निकाल लिया जायगा। मुझे ख़्याल आया कि एक आदमी एक वर्ष आगे तककी तैयारी करता है, पर उसे नहीं मालूम है कि आज शामके पहले ही वह समाप्त हो जानेवाला है। तभी मुझे प्रभुका दूसरा वचन स्मरण हो आया : तुम्हें यह जान लेना है कि मनुष्यको क्या नहीं दिया गया है ?

"मनुष्योंके भीतर क्या है, यह मैं पहले ही समझ चुका था; अब मेरी समझमें यह भी आ गया कि मनुष्योंको क्या नहीं दिया गया है। मनुष्योंको इस बातका ज्ञान नहीं दिया गया है कि उन्हें अपने जीवनके लिये किस चीज़की आवश्यकता है। तभी मैंने दूसरी बार मुस्कराया। मैं बहुत प्रसन्न था, क्योंकि मैंने अपने साथी फ़रिश्तेको देख लिया था, और प्रभुने अपना दूसरा वचन भी मेरे सामने प्रकाशित कर दिया था।

"लेकिन अभी भी पूरी बात मेरी समझमें नहीं आ रही थी। अभी मुझे यह समझना बाक़ी था कि मनुष्य किस आधार पर जीता है ?

"मैं तुम्हारे साथ रहा, और प्रभुके तीसरे वचनके प्रकाशनकी प्रतीक्षा करता रहा। पाँच बरस बीत गये; तभी ये बालिकायें आयीं—ये युगल बालिकाएँ जो इस स्त्रीके साथ आई थीं। मैंने इन बच्चियोंको पहचान लिया और यह भी समझ लिया कि कैसे ये लड़कियाँ ज़िन्दा रह सकी हैं। मैंने समझ लिया और सोचा : इन बच्चियोंकी माँने इन्हींके नामपर प्राणोंकी भीख माँगी थी; मैंने उसकी बातपर भरोसा किया था और सोचा था कि बच्चे माँ-बापके बिना ज़िन्दा **नहीं रह सकते**। लेकिन

चाहता है। अब मुझे कुछ और भी बात समझमें आ गई।

"मैंने समझ लिया कि प्रभु प्रत्येक मनुष्यको स्वयम् अपने ही लिये नहीं जिलाना चाहता, इसीसे प्रत्येक मनुष्यको व्यक्तिगत रूपसे यह नहीं मालूम होने दिया है कि उसकी आवश्यकता क्या है? वह उन्हें बन्धु-भावसे जीते हुए देखना चाहता है, और इसीसे उसने मानवोंको केवल यह जताया है, कि उनकी सबकी मिलाकर आवश्यकता क्या है; वे सब अपने सबके लिये और प्रत्येक लिये क्या चाहते हैं?

"अब मेरी समझमें आ गया है कि मनुष्योंका यह ख़याल है कि वे आप अपनी ही खुदकी फ़िक्र करके ज़िन्दा रह सकते हैं; लेकिन असलमें तो वे प्रेमके आधारपर ही जीते हैं। जो प्रेमके भीतर जीता है, वही प्रभुके भीतर जीता है और प्रभु उसके ही भीतर जीता है; क्योंकि प्रभु स्वयम् ही प्रेम है।"

और वह देव-दूत प्रभुका स्तुति-गान करने लगा और उसकी आवाजसे वह घर काँपने लगा। घरकी छत खुल गई, और एक अग्निका खम्भा धरतीमेंसे निकल कर आसमानकी ओर उठ गया। सीमियॉन, उसकी स्त्री तथा बच्चे अपने-अपने घुटनोंमें दुबक गये। उस देवदूतकी पीठपरके पंख खुल गये और वह स्वर्गकी ओर उड़ चला।

जब सीमियॉनको होश आया, तो वह झोपड़ा जैसाका तैसा ही था; कमरेमें सीमियॉन और उसके परिवारके सिवाय और कोई नहीं था।

समाप्त

उस अनजान स्त्रीने उन बच्चियोंको दूध पिलाकर पर्वरिश किया है। और जब वह स्त्री उन पराये बच्चोंके लिये प्यारके आँसू टपका रही थी, तभी मुझे उसके भीतर जीवन्त प्रभुका दर्शन हुआ, और मेरी समझमें आ गया कि मनुष्य किस आधारपर जीता है। मैंने समझ लिया कि प्रभुने अपना अन्तिम वचन भी मेरे आगे प्रकाशित कर दिया है, और मैं तीसरी बार मुस्करा उठा।"

[१२]

ठीक तभी उस देव-दूतके शरीरपरसे वस्त्र खिर पड़े, और वह प्रकाशसे आवृत्त खड़ा रह गया; उसपर आँख ठहराना कठिन हो गया। उसकी आवाज गंभीरसे गंभीरतर होती चली; ऐसा लगता था मानो वह आवाज उसके भीतरसे न आकर सीधी स्वर्गसे ही आ रही हो। उस देवदूतने कहा : "मेरी समझमें आ गया है कि मनुष्य केवल अपनी फ़िक्र करके ही ज़िन्दा नहीं रह सकता है, बल्कि प्रेमके आधार-पर ही जी सकता है।

"उस माँको इस बातका ज्ञान नहीं दिया गया था कि उसके बच्चेको जीनेके लिये किस चीजकी जरूरत है। उस धनवानको भी अपनी आवश्यकताका ज्ञान नहीं था। और किसी भी मनुष्यको इस बातका ज्ञान नहीं दिया गया है कि आया उसे अपने जीनेके लिये बूटोंकी जरूरत है, या शाम होनेसे पहले ही दफ़ना दिये जानेके लिये मृतक-शवके जूतोंकी जरूरत है?

"मैं अपने मर्त्य जीवनकी रक्षा अपनी जरूरतोंकी फ़िक्र करके नहीं कर सका; बल्कि चूँकि उस राह जानेवाले राहगीरमें और उसकी स्त्रीमें प्रेमका भाव था और चूँकि उस स्त्रीने मुझे प्रेम और दया दिखाई, इसीसे मैं जीवित रह सका। वे अनाथ बच्चे इसलिये नहीं जिये कि औरोंने उनकी फ़िक्र की थी; बल्कि उस अनजान स्त्रीके हृदयके प्रेम और दयाके आधारपर ही वे जीवित रह सके। और ये सभी मनुष्य जो जी रहे हैं, सो अपनी चिंता करनेके कारण नहीं जी रहे हैं; पर केवल इसलिये कि मनुष्यके भीतर प्रेमका वास है।

"मैं जानता था कि प्रभुने मनुष्यको जीवन दिया है और वह उन्हें जिलाना

चाहता है। अब मुझे कुछ और भी बात समझमें आ गई।

"मैंने समझ लिया कि प्रभु प्रत्येक मनुष्यको स्वयम् अपने ही लिये नहीं जिलाना चाहता, इसीसे प्रत्येक मनुष्यको व्यक्तिगत रूपसे यह नहीं मालूम होने दिया है कि उसकी आवश्यकता क्या है? वह उन्हें बन्धु-भावसे जीते हुए देखना चाहता है, और इसीसे उसने मानवोंको केवल यह जताया है, कि उनकी सबकी मिलाकर आवश्यकता क्या है; वे सब अपने सबके लिये और प्रत्येक लिये क्या चाहते हैं?

"अब मेरी समझमें आ गया है कि मनुष्योंका यह ख़याल है कि वे आप अपनी ही खुदकी फ़िक्र करके ज़िन्दा रह सकते हैं; लेकिन असलमें तो वे प्रेमके आधारपर ही जीते हैं। जो प्रेमके भीतर जीता है, वही प्रभुके भीतर जीता है और प्रभु उसके ही भीतर जीता है; क्योंकि प्रभु स्वयम् ही प्रेम है।"

और वह देव-दूत प्रभुका स्तुति-गान करने लगा और उसकी आवाज़से वह घर काँपने लगा। घरकी छत खुल गई, और एक अग्निका खम्बा धरतीमेंसे निकल कर आसमानकी ओर उठ गया। सीमियॉन, उसकी स्त्री तथा बच्चे अपने-अपने घुटनोंमें दुबक गये। उस देवदूतकी पीठपरके पंख खुल गये और वह स्वर्गकी ओर उड़ चला।

जब सीमियॉनको होश आया, तो वह झोपड़ा जैसाका तैसा ही था; कमरेमें सीमियॉन और उसके परिवारके सिवाय और कोई नहीं था।

समाप्त